वर्ष-एक | अंक-1

आलेख

आलेख

अगस्त, 2021

वर्ष-एक | अंक-1

सम्पादक

पी.के. झा

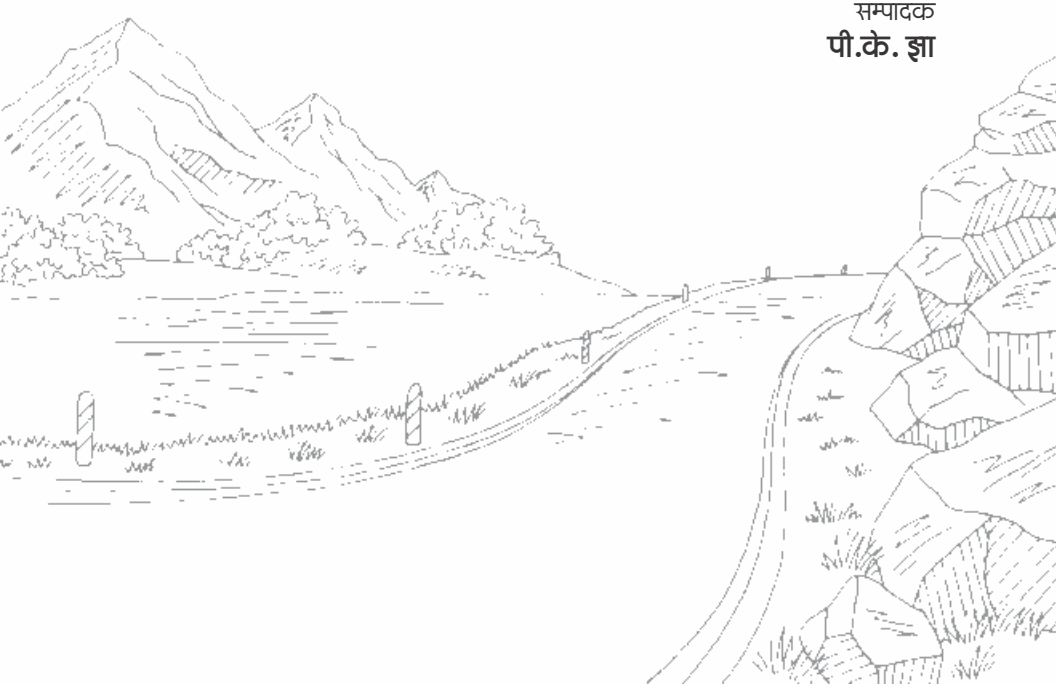

भोजपुरी साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग का प्रकाशन

सम्पर्क
निदेशक / सम्पादक
भोजपुरी साहित्य अकादमी,
मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन बाणगंगा, भोपाल - 462003
E- mail : bhojpurisahityaacademy@gmail.com
Website : www.bhojpuriacademymp.in

आवरण चित्र
निदेशक / सम्पादक भोजपुरी साहित्य अकादमी,
मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन बाणगंगा, भोपाल - 462003

इस अंक में विभिन्न लेखो के विवरण, तथ्य, विचार प्रकाशित रचनाकारों के अपने हैं। सम्पादक या भोजपुरी साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश का शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

भोजपुरी साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्,
मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग का प्रकाशन

इस अंक में...

सम्पादकीय प्रस्तावना

भोजपुरी धरती और उसका लोक/विजय बहादुर सिंह/1

भोजपुरी धरती एवं लोक राग/कृष्णा बिहारी सिंह/7

भोजपुरी क्षेत्रों में स्वतंत्रता संग्राम में जनभागीदारी एवं जन चेतना/शम्भू सिंह/30

भोजपुरी क्षेत्रों में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जनभागीदारी एवं जन चेतना की स्थिति/विजय कुमार/42

स्वतंत्रता संग्राम में जनभागीदारीःसंदर्भ भोजपुरी क्षेत्र/आशीष कुमार मिश्र/48

भोजपुरी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना/स्व. डॉ. अर्जुन तिवारी/57

भोजपुरी कला और समकालीन कलाकार/ज्योतिष जोशी/68

भोजपुरी संस्कृति में कजरी एवं नारी शक्ति/भारत सिंह भारती/84

भोजपुरी संस्कृति में कजरी एवं नारी शक्ति/मनोरंजन ओझा/88

भोजपुरी गीतों में छन्द विमर्श/स्व.प्रो. (डॉ.) शान्ति जैन/97

भिखारी ठाकुरः भोजपुरी का अनगढ़ हीरा/अवधेश प्रधान/108

भिखारी ठाकुरः लोकजिजीविषा के निश्छल प्रतीक/हृषीकेश सुलभ/124

प्रेम बाग ना बौरे हो, प्रेम न हाट बिकाय.. भोजपुरी संगीत अउर नाटक/मृत्युंजय कुमार सिंह/131

हिन्दी की भोजपुरी कविताई/प्रकाश उदय/144

भोजपुरी की निर्गुनिया परम्परा/भगवती प्रसाद द्विवेदी/153

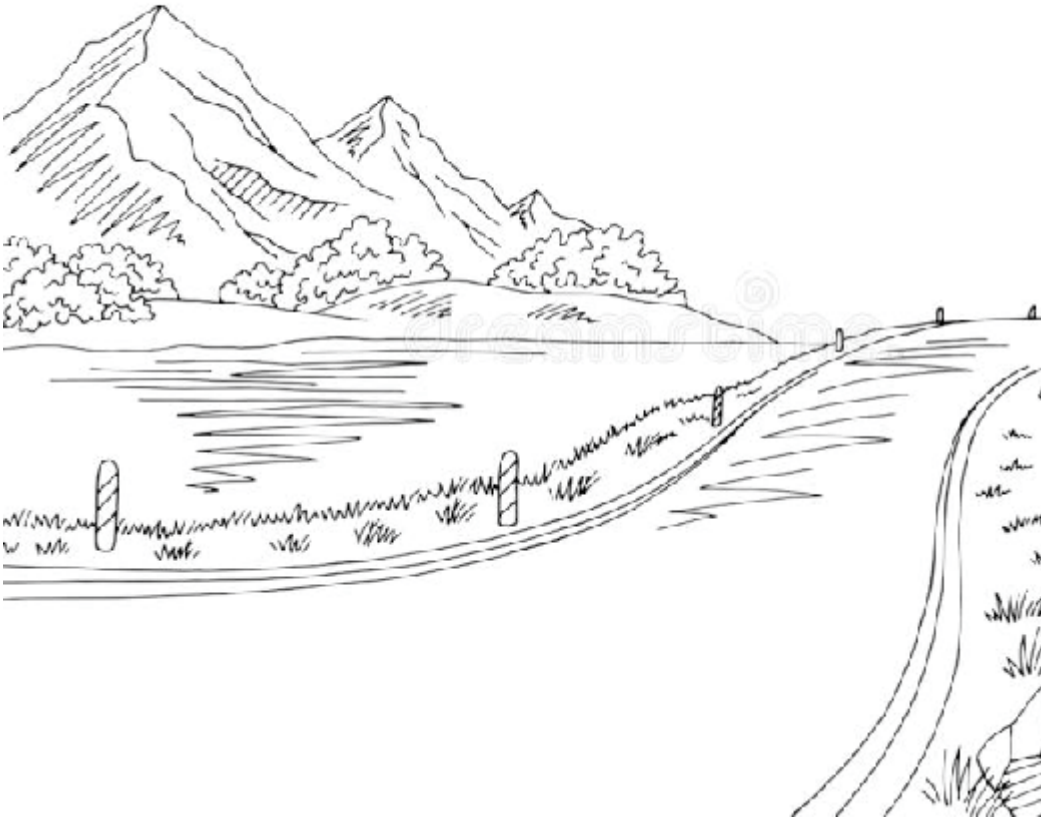

l ikndh ;

भारतीय लोक संस्कृति की आत्मा भारत का लोक जनमानस है, जो नगरों से दूर वन–पर्वतों व गांवों में वास करता है। भारत के प्रत्येक प्रांत एवं अंचल की अपनी विशेष संस्कृति और परंपरा है। विविधता में एकता भी सर्वत्र परिलक्षित है। भारत के इतिहास, संस्कृति एवं परंपराओं में भोजपुरी कला, साहित्य, संगीत, नाट्य क्षेत्र कि उपलब्धियां स्थापित हैं।

मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद के अन्तर्गत कार्यरत् भोजपुरी साहित्य अकादमी द्वारा समय–समय पर साहित्यिक विमर्श, परिचर्चा एवं सांस्कृतिक प्रस्तुतियों के प्रसंग भी आयोजित किये जाते हैं। उक्त विमर्श एवं परिचर्चा में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत लेख को संकलित कर उन्हें प्रकाशित करने हेतु अकादमी ने वार्षिक प्रकाशन ''आलेख'' का प्रयास प्रारंभ किया है। भोजपुरी साहित्य के संरक्षाण हेतु अकादमी का यह एक प्रयास है।

मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग द्वारा वर्ष 2007-08 में राष्ट्रीय देवी अहिल्या राष्ट्रीय सम्मान से समान्नित पदम्श्री स्व. प्रो. (डॉ.) शांति जैन द्वारा ''भोजपुरी गीतों में छंद विमर्श'' विषयक उनके लेख अकादमी को प्रकाशनार्थ उपलब्ध कराये गये थे। यहां यह उल्लेखनीय है कि प्रो. (डॉ.) शांति जैन का देहांत हाल ही में हो गया है। स्व. डॉ. शांति जैन ने भोजपुरी गीतों के क्षेत्र में गहरा सृजन किया है। उनकी 20 से अधिक पुस्तकें देश के प्रतिष्ठित प्रकाशकों ने प्रकाशित की हैं। उन्होंने भोजपुरी फिल्मों तथा टेली फिल्मों के लिए भी लेखन किया है। अकादमी के प्रथम प्रकाशन ''आलेख'' उनकी स्मृति को समर्पित है।

स्व. डॉ. अर्जुन तिवारी, मानद निदेशक, काशी पत्रकारिता पीठ, वाराणसी के लेख भी इस अंक में सम्मिलित हैं। अकादमी को लेख उपलब्ध कराने के

बाद हाल ही में उनका भी देहावसान हो गया है। उनकी उपलब्धी एवं स्मृति को भी अकादमी नमन करती है।

मैं उन सभी विद्वान लेखकों रचनाकारों के प्रति कृतज्ञ हूं जिन्होंने अपने आलेख अकादमी को प्रकाशनार्थ उपलब्ध कराए गए है। मैं अन्य सभी का भी आभार व्यक्त करता हूं जिनके प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग से भोजपुरी साहित्य अकादमी का यह प्रथम प्रकाशन अपना स्वरूप प्राप्त कर सका है।

डॉ. पी.के. झा
निदेशक
भोजपुरी साहित्य अकादमी

Hkkt ijh/kjrh vkj mldk ykd

विजय बहादुर सिंह

ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने भले ही हमारे देश को अपमानित करने और, गुलाम बनाए रखने के लिये तरह तरह के झूठे मुहावरें ईजाद किए पर एक समय वह भी आया जब इसी देश के लोगों ने उन्हें यह महसूस करने को विवश कर दिया कि अगर मानव गरिमा और उसकी ऊंचाइयों को समझना और मापना हो, संस्कृति और साहित्य दर्शन और विज्ञान की विशिष्टता को जानना और महसूस करना हो तो भारत उसका आदर्श प्रतिमान बन सकता है। किन्तु उन्होंने हमारी पारम्परिक जातीय स्मृतियों को मिटाने और हमारी चेतना की दिशा को उल्टी ओर घुमा देने की भी कोशिशें की और इसे सदियों तक गुलाम बनाए रखा।

इन स्थितियों का अनुभव कर एक महान शोधकर्ता और चिन्तक धर्मपाल ने यह सवाल उठाया कि हम किसी और के संसार में रहने लगे हैं 'किन्तु अपने चित्त को समझे बिना हमारा काम नहीं चलेगा'। इसी क्रम में उन्होंने यह चिन्ता भी व्यक्त की कि आधुनिक ढंग से शिक्षित, कथित तौर पर काफी पढ़े –लिखे और आधुनिक माने जाने और स्वयं को ऐसा समझने वाले लोग अब शायद ही इस देश के बुनियादी चित्त को समझ सकें। कारण यह कि ये सारे लोग अक्षर ज्ञान को ही सबसे बड़ी शिक्षा मानते है। पढ़–लिखकर बेहतर आजीविका चला लेने को ही वे ज्ञान और शिक्षा मानते हैं। उस दृष्टि से देखें तो भारत के वर्तमान काल में अशिक्षितों की संख्या कम नहीं होगी। किन्तु उन्हें जीवन–यापन की विद्याओं के अलावा मनुष्य बनकर रहने की कला कथित आधुनिकों से कुछ ज्यादा ही आती होगी। धर्मपाल उदाहरण देते हैं– मान

लीजिए किसी को खाली भोजपुरी ही लिखनी–पढ़नी आती है। उसे हम शिक्षित मानेंगे या अशिक्षित ? शायद वह हमें अशिक्षित ही दिखाई देगा। हम कहेंगे कि भाई इसे अक्षरज्ञान तो है, पर भोजपुरी का अक्षर–ज्ञान तो कोई अक्षर–ज्ञान न हुआ। इसे तो अच्छी नागरी हिन्दी भी नहीं आती।

'धर्मपाल कह उठते हैं– 'यह हम किस चक्कर में फँस गए हैं ? इस तरह दुनियां की बहती हवाओं के साथ झुक–झुक कर हम कहाँ पहुँचेंगे ?' तब इसका उपाय और उपचार क्या है? धर्मपाल कहते है उस वृहत्तर लोक जीवन में जाना जिसे हम आधुनिक कहे जाने वाले लोगों ने अविकसित और पिछड़ा समझ कर अपनत्व की जगह परायी निगाह से देखने की अपनी समझ और आदत बना ली है। इसका कारण भी वे बताते है कि अपने स्वाभाविक चित्त से हमारा विस्थापन। निर्मल वर्मा जैसे चिन्तक इसे ही औपनिवेशिक मानस कहते हैं। प्रकारान्तर से गुलाम मानस। तब हमें स्वाधीन होने के लिए अपना स्वाभाविक चित्त और मानस कैसे मिलेगा, इसका उत्तर देते हुए धर्मपाल कहते हैं उस दूरस्थ लोक और उनकी स्थानीय जीवन–शैली में बचे रह गए उन शब्दों और आचरणों की खोज और पहचान करके ही इसे संभव किया जा सकेगा। आजकल की प्रचलित पदावली में कहें तो लोकांचलों और उनकी बोलियों में अभी भी बचे–खुचे लोक–व्यवहारों और उनके जीवन आचारों में वह सब मिलेगा।

संतोष यह कि अब ऐसा सोचने और कहने वालों में धर्मपाल ही अकेले मनस्वी चिंतक नहीं हैं। कुमार गंधर्व जैसे असाधारण गायक भी हैं जिन्होंने लोककला और लोकगीत वाले प्रश्न पर कहा कि लोक कलाएँ शास्त्रीय (नागर) कलाओं की मातृस्थानीय हैं। गर्भकेन्द्र हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में जब भारत के अनेक प्रदेशों की स्वाधीन और स्वतन्त्र बोलियों को देखते हैं तो उनकी विपुलता देख चकित रह जाना पड़ता है। भारत अगर अपनी विविधता, विलक्षणता और बहुलता में आज भी जाना जाता

है तो कारण यही कि यहाँ के लोगों का सहज मानस जितना स्वाधीनताकामी है उतना ही स्वतन्त्रताजीवी भी। इसे साक्षात् अपनी आँखों से देखना हो तो फिर हमें उसी लोक में जाना पड़ेगा। विपरीत इसके आप महानगरीय जीवन में खप चुके लोगों के बीच जायँ तो यही विविधता नदारद मिलेगी। इस पर गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए एक दूसरे समाज विज्ञानी पूरनचन्द जोशी लिखते हैं– ये इतिहास बताता है कि वैचारिक क्षेत्र में नई लहर के उभार के बहुत पहले भावनात्मक मंथन से प्रेरित संस्कृति नई लहर का सबसे सशक्त माध्यम बन जाती है और वैचारिक नवोदय के लिए जमीन तैयार करती है। जहाँ किताबी बुद्धिजीवी विफल रहा है वहाँ बहुत बार जिन्दगी की किताब से जुड़ा संस्कृतिकर्मी नए स्वरों का वाहक साबित हुआ है। '' इसका खूबसूरत उदाहरण हमें उस लोक से मिलता है जिसकी उपज मंगल पाण्डेय जैसे बलिदानी क्रांतिवीर और मेरठ के किसानवंशी अठारह सौ सत्तावन के क्रांतिकारी सैनिक थे। इन सबका संबंध शहरी और महानगरीय एकरूपी जीवन से नहीं उस स्वतंत्रचेता लोकमानस से था जिसका एक और उदाहरण देते हुए श्री जोशी लिखते हैं– लोकगीतों की एक विशेषता मैंने यह पाई कि उनमें मनुष्य कभी मानसिक या नैतिक रूप से आत्मसमर्पण नहीं करता। उसमें पराजय की भावना नहीं है। पराजय कहीं है भी तो क्षणिक है। अन्यथा उसका मुख्य स्वर 'चरैवेति–चरैवेति' वाला स्वर है। निरन्तर आगे बढ़ने और नई मंजिलें तय करने वाला स्वर है।' इसमें विनम्रता पूर्वक मैं जोड़ना चाहता हूं अपराजेयता का स्वर।

यह सब अगर संभव होता रहा तो वही जिंदगी की किताब थी जिसे भारत के विविधता सम्पन्न लोकांचलों ने काफी हद तक अभी भी सहेज रखा है। शहरी सभ्यता इसीलिए खतरनाक एकरूपता की शिकार हो चुकी है जबकि लोकांचलो ने अभी तक अपनी मानसिक स्वतंत्रता के चलते इस विविधरूपता को बचा कर रखा है। लोग बचेंगे तो विविधता और इस बहुरूपता की रक्षा होती ही रहेंगी।

इसी भारतीय लोक का सबसे रंगीन, जीवन्त और प्राणास्पद एक हिस्सा भोजपुर अंचल है उत्तर भारत के हिन्दी भाषी बिहार प्रदेश का यह भोजपुर अंचल आज बिहारी जन –जीवन और संस्कृति का अस्मिता–कार्ड सा बनता जा रहा है जबकि समूचा बिहार विद्यापति जैसे कालजयी कवि और उनकी बोली को अब भाषा का दर्जा मिल चुका है। इसी तरह मगही, अंगिका आदि बोलियों की भी अपनी विशिष्ट पहचान है। तब भी भोजपुर और भोजपुरी बोली बिहार के केन्द्र में आकर बैठ गए हैं। इसके कारण में जायँ तो कहना यही पड़ेगा इस अंचल के लोग भारत के महानगरों–नगरों से लेकर विश्व के कई एक स्वतंत्र राष्ट्रों में भोजपुरिया बोली–बानी और जीवनचारों को अभी तक अपनी जीवन–सुंगध बनाए हुए हैं। दूसरी ओर भोजपुरी फिल्मों ने भी अपना एक चर्चित किन्तु विवादास्पद चेहरा तो बना ही रखा है। लोक गायकों की एक चुनिंदा संख्या भी उसमें कम योगदान नहीं कर रही।

भोजपुर अंचल और भोजपुरियां बोली–बानी क्या है, उसका जीवन–सौन्दर्य क्या है, इस पर विस्तार से लगभग एक शोध–प्रबन्ध सा लिखते हुए हिन्दी के ललित निबंधकार, जीवनकार और हिन्दी पत्रकारिता के खोजी लेखक पद्मश्री डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र ने अपने निबंध 'भोजपुरी धरती और लोक–राग' में उस अंचल के लोक प्रचलित गीत 'बटोहिया' को उद्धत करते हुए हमें लोकसर्जक के इन शब्दों का स्मरण कराया है–

सुन्दर-सुभूमि भैया भारत के देसवा से,
मोरे प्राण बसे गंगाधार रे बटोहिया।
गंगा रे जमुनवा के भूगमग पनियाँ से,
सरजू भूमकि लहरावे दे बटोहिया।

डॉ० मिश्र के अनुसार भोजपुर भले ही एक बोली अंचल है किन्तु इसकी चेतना में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार एक समग्रता की भाव–दृष्टि निवास करती है। इसीलिए भोजपुरी कंठ की अवमानना होगी यदि उसे

आंचलिक घेरान में घुसने–सिमटने की परिकल्पना की स्वर–रचना में नियोजित किया जाय।..... यह धरती है, जिसकी अपनी स्मृति है अपने अभाव हैं– किन्तु इसके चप्पे–चप्पे में क्रांति बीज के भंडार भी हैं।

निरधन, निरबल, निरगुन गँवार,
अलगा आपन बोली विचार।
कन-कन में जेकरा क्रान्ति बीज,
अईसन भोजपुर टप्पा हमार,
इतिहास कहत इहै पन्ना पसार।

क्रांतिबीज की याद करूं तो बाबू कुंवर सिंह याद आते हैं और बलिया वालों का दावा सच हो तो मंगल पाण्डेय भी। वैसे उत्तर प्रदेश के सरकारी रिकार्ड में और अमृतलाल नागर जैसे बड़े लेखक की किताब 'गदर के फूल' में वे उत्तर प्रदेश के ही अम्बेडकर नगर (पूर्व नाम फैजाबाद और अब अयोध्या) के अकबरपुर तहसील के सुरहुर गाँव के माने गये हैं। अवध आर्मी में वे थे ही।

हम यह तो नहीं भूल सकते इसी भोजपुर ने हमें लोकनायक जयप्रकाश जैसा प्रकाशधर्मी क्रांतिनायक और भारत के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में विद्वता से मण्डित प्रथम संत राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद दिया। लोक नाट्य में भिखारी ठाकुर और हिन्दी उपन्यास और ललित निबंध के क्षेत्र में विलक्षण गल्पकार और महान आलोचक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसा विद्या और प्रज्ञा पुरूष दिया सूची गिनाऊं तो सारा लेख इसी के हवाले हो जायेगा। पर भारत के समकालीन मीडिया में कौन सबसे ज्यादा चर्चित ऐंकर है, जो गालियां खाकर भी हंसने की कला जानता है फिर भी सत्य का दामन नही छोड़ता। यह कौन नही जानता ।

कौन नहीं जानता गाँधी ने अपने –आप को और भारत के दुःख–दर्द और शासन द्वारा किए जा रहे अत्याचारों को चम्पारण–सत्याग्रह के ही मार्फत जाना। चम्पारण की महिलाएँ अपनी धरती की इस महिमा का बखान आज भी

यहाँ तक करती हैं कि गाँधी को गाँधी बनने की भूमिका चम्पारण की धरती ने ही अदा की–

चम्पारन के इहै धरती बा
जो गाँधी का महात्मा बनइलें बा

तब किसकी कामना नहीं होगी कि वह इस धरती का अन्न–जल खा–पीकर अपनी बीमार हो चुकी चेतना को निरोग और स्वस्थ करे। ऐसी धरती और उसकी बोली की सच्चाई और मिठास रस–पान करे। भोजपुरी धरती यही तो करती है।

पता नहीं, हममें से कितने अपनी यह मनोकामना पूरी कर पाएँगे। कितने मन ही मन सोचते भर रह जाएँगे। ऐसे ही भारत जनों या भारत के लोगों के लिए मध्यप्रदेश शासन और उसकी मध्यप्रदेश भोजपुरी अकादमी ने यह सत्प्रयास और शुभारम्भ किया है कि उन तक इस अंचल और धरती की एक झलक पहुंचाई जाय। अकारण नहीं। इस पुस्तक में ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हिन्दी कवि केदारनाथ सिंह (जिला–बलिया) से लेकर कई जाने–माने भोजपुरियां लेखकों को सम्मानपूर्वक आमंत्रित कर अपनी धरती और बोली–बानी को सिंहावलोकित करें। याद आते हैं महान कवि विद्यापति जिन्होंने संस्कृत भाषी अभिजात मैथिल परिवार में जन्म लेकर भी यह महसूस किया कि 'देसिल बैना सब जन मिट्ठा।' याद आते हैं वे सारे महान कवि जिन्हें मानक भाषा में महारत हासिल थी फिर भी बोली में ही अपने विरल अनुभवों और विलक्षण सृजनशीलता का सौन्दर्य बिखेरा। याद आते हैं आदरणीय स्व. चन्द्रशेखर (बलिया) जी जिन्होंने काल–विशेष में प्रधान मंत्री का पद सुशोभित कर चुकने के बाद भोजपुरी समाज की सभा में मानक हिन्दी छोड़कर अपना वक्तव्य भोजपुरी में ही दिया था।

Hkkt ijh /kjrh vkj ykd&jkx

कृष्णा बिहारी सिंह

अपनी बोली–बानी, धरती–धाम, घर–आँगन, राह–घाट, खेत–खलिहान से मिलना जुलना, बोलना–बतिआना हर आदमी को अन्तरंग सुख देता है। अपनी शोभा शक्ति की चर्चा करना और सुनना अत्यन्त प्रीतिकर होता है। मेरी मातृबोली में दीर्घ काल से गूँजनेवाले लोकगीतों की वैशिष्ट्य–चर्चा का अवसर देकर मेरी ग्रामीण संवेदना को उल्लास–मुखर होने का उपयुक्त आधार आपने दिया है। आपके विवेक और सहृदयता के लिए मैं आपका आभारी हूँ। अपनी बोली और अपनी माँ किसे अच्छी नहीं लगती और जाति–अपमान किसे कष्ट नहीं देता। जाति से हमारा अभिप्राय उस बहुआयामी आधार से है जो हमारे व्यक्तित्व को रूपायित करता है, स्वकीय वैशष्ट्य से युक्त करता है। भोजपुरी धरती, हवा–पानी ने मुझे चलना–बोलना सिखाया है, 'अँखफोर' बनाया है। लोक चक्षु से चक्षु मिलाने की संवेदना और शक्ति दी है। इसलिए इसे जब कोई अन्यथा दृष्टि से निहारता है तो अनायास मेरा स्वाभिमान उत्तेजित हो जाता है। अवहेलना मूलक उक्तियाँ अक्सर मन को डंक मारती रहती हैं कि हम पहरा देने वाले, गाड़ियों को राह दिखाने वाले हैं, ठेला–रिक्शा खींचने वाले हैं, बोझा और डाक ढोने वाले हैं। यह ठीक है कि गाँव से लेकर महानगरों तक, देश से विदेश तक जहाँ कहीं हम जाते हैं, अपनी कर्मठता और चारित्रिक सफाई द्वारा अपनी धरती और राष्ट्र की मान रक्षा के प्रति सचेत–सक्रिय रहते हैं। श्रम रुचि हमारे चरित्र के धन पक्ष को उजागर करती है। मगर हमारी स्वकीय पहिचान इतनी ही नहीं है कि हम सीधे हैं, सरल हैं, श्रमजीवी हैं। बंगाल और यह महानगर जिनका प्रवास क्षेत्र रहा है, प्रख्यात

गणितशास्त्री डॉ. गणेश प्रसाद, राजनेता डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, अप्रतिम शास्त्रवेत्ता महामहोपाध्याय डॉ. रामअवतार शर्मा, प्रख्यात मनीषी महामहोपाध्याय पण्डित सकलनारायण शर्मा और मनीषी साहित्यकार पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी भोजपुरी धरती के विद्या रत्न हैं जो अपने प्रतिभा–उत्कर्ष से बंगीय मेधा की गुमानी मुद्रा को चमत्कृत और म्लान करते रहे हैं। हिन्दी के शीर्षस्थ गद्यशिल्पी मुंशी प्रेमचन्द, आचार्य शिवपूजन सहाय और पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' हमारे आँगन के आलोक स्तम्भ थे। यह शक्ति का एक विनम्र संकेत है। भोजपुरी धरती की प्रकृति की सर्वाधिक दीप्त पहिचान उसकी सहज उदारता ही है। आपमें से अधिकांश ने भोजपुरी का प्रसिद्ध गीत बटोहिया पढ़ा होगा, उसमें व्यंजित उद्दात्त जातीय भाव को लक्ष्य कीजिए–

भागीरथ कानोड़िया लोक साहित्य व्याख्यान माला के अंतर्गत भारतीय भाषा परिषद सभागार में पठित प्रथम निबंध।

मोरे प्रान बसे हिमखोह रे बटोहिया।
एक द्वार घेरे राम हिम कोतवलवा से,
तीन द्वार सिन्धु घहरावे रे बटोहिया।
जाऊ जाऊ भैया रे, बटोही हिन्दी देखि आऊ,
जहवाँ कुहुकि कोइली बोले रे बटोहिया।
पवन सुगन्ध मन्द अगर चन्दनवा से,
कामिनी विरह राग गावे रे बटोहिया।
विपिन अगम घन सघन बगन बीचे,
चम्पक कुसुम रंग देवे रे बटोहिया।
द्रुमबट पीपल कदम्ब निम्ब आम वृक्ष,
केतकी गुलाब फूल फूले रे बटोहिया।
तोता तूती बोले राम बोले मेघरजवा से,
पपिहा के पी–पी जिया साले रे बटोहिया।

सुन्दर–सुभूमि भैया भारत के देसवा से,
मोरे प्राण बसे गंगाधार रे बटोहिया।
गंगा रे जमुनवा के झगमग पनियाँ से,
सरजू झमकि लहरावे रे बटोहिया।
ब्रह्मपुत्र पंचनद घहरत निसि दिन,
सोनभद्र मीठ स्वर गावे रे बटोहिया।
अपर अनेक नदी उमड़ि घुमड़ि नाचे,
जुगनु के जड़ता भगावे रे बटोहिया।
आगरा प्रयाग काशी दिल्ली कलकतवा से
मोरे प्राण बसे सरजूतीर रे बटोहिया।
जाऊ–जाऊ भैया रे बटोही हिन्दी देखि आऊ,
जहाँ ऋषि चारों वेद गावे रे बटोहिया।
सीता के विमल जस राम जस कृष्ण जस,
मोरे बाप–दादा के कहानी के बटोहिया।
व्यास बाल्मिकि ऋषि गौतम कपिलदेव,
सूतल अमर के जगावे रे बटोहिया।
नानक कबीरदास शंकर श्रीरामकृष्ण
अलख के गतिया बतावे रे बटोहिया।
विद्यापति कालिदास सूर जयदेव कवि,
तुलसी के सरल कहानी रे बटोहिया।
जाऊ जाऊ भैया रे बटोही हिन्द देखि आऊ,
जहाँ सुख झूले धान खेत रे बटोहिया।
बुद्धदेव पृथु वीर अरजुन शिवाजी के,
फिरि–फिरि हिय सुधि आवे रे बटोहिया।
अपर प्रदेश देश सुभग सुधर वेश,
मोरे हिन्द जग के निचोड़ रे बटोहिया।

सुन्दर सुभूमि भैया भारत के भूमि जेहि,
जन 'रघुवीर' सिर नावे रे बटोहिया।

भोजपुरी कंठ में देश का समग्र भूगोल उल्लासित है, इतिहास का गुमान मुखर, है, वर्तमान की चुनौतियों के प्रति ललकार है, भविष्य की गुहार है। इसे छोड़कर भोजपुरी अपनी पहचान मिटा देगी। भोजपुरी का मूलभाव आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की भाषा में 'सोगहग' यानी समग्र भाव है। इसलिए भोजपुरी कंठ की यह अवमानना होगी यदि उसे आंचलिक घेरान में घुसने–सिमटने की परिकल्पना की स्वर रचना में नियोजित किया गया। यह धरती है, जिसकी अपनी समृद्धि है, अपना अभाव है, कोख में संस्कृति–इतिहास की विपुल सम्पदा और चेहरे पर 'कुछ परवा नहीं' का भाव है, अपनी बोली, अपना विचार है, चप्पे–चप्पे में क्रान्ति बीज के भंडार है–

निरधन, निरबल, निरगुन गँवार
अलगा आपन बोली विचार
कन-कन में जेकरा क्रान्ति बीज
अईसन भोजपुर टप्पा हमार
इतिहास कहत पन्ना पसार

मगर यह न समझा जाय कि भोजपुरी क्षेत्र निर्धन और गँवारों का क्षेत्र है। यह सरलता और पौरुष की धरती है, जागृत मेधा–मनीषा की धरती है। इसमें विपत्तियों से जूझने की अदम्य शक्ति है, यह अन्नपूर्णा की जननी है, यह धान की धरती है, गेहूँ, गन्ने की माई है, यह पौरुष का टप्पा है, ऋषियों–मनीषियों का धाम है। इतिहास और संस्कृति की टूटी श्रृंखला को श्रृंखलित करने वाले, अतीत को नयी रोशनी और नया अर्थ देने वाले उपकरणों से इसकी कोख सम्पन्न है। सैदपुर, सारनाथ, कुशीनगर, विश्वविख्यात पुरातात्विक महत्व के स्थल हैं। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपने जनपद 'आजमगढ़ की पुरातात्विक यात्रा' बड़े ममत्व तथा अचूक विवेक के साथ की थी। और अपने

गाँव–ज्वार की ऐतिहासिक महत्ता का सारस्वत साक्ष्य प्रस्तुत किया था। भारतीय विद्या की प्राचीन राजधानी और निकष–स्थली काशी भोजपुरी क्षेत्र की सारस्वत समृद्धि का प्रमाण है। यह सच है कि यहाँ का सारल्य यदा–कदा उपहास का विषय बन जाता है, किन्तु यहाँ की प्रत्युत्पन्नमति बड़े–बड़े मनीषियों–धौरन्धरिकों को चक्कर में डाल देती है। प्रसिद्ध है पण्डित हजारीप्रसाद द्विवेदी की प्रत्युत्पन्नमति। जैसे द्विवेदीजी से राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने विनोद में पूछा था कि बलियावालों को गंवार क्यों कहा जाता है और द्विवेदीजी ने मुँहतोड़ जवाब से राष्ट्रकवि को मूक बना दिया था। कहते हैं कि एकबार लगभग वैसा ही विनोद किया था नैयायिकों की धरती मिथिला के महामनीषी डॉ. अमरनाथ झा ने बलिया के एक युवक से। झा साहब उन दिनों बिहार पब्लिक सर्विस कमीशन के प्रधान अधिकारी थे। उनके सामने बलिया का एक मेधावी युवक इन्टरव्यू देने उपस्थित हुआ। उसके ग्राम्य स्वरूप सारल्य को देखते ही झा महोदय को यकायक इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वे दिन याद आ गये थे जब बलिया, आजमगढ़, गाजीपुर, गोरखपुर से आनेवाले विद्यार्थियों को आधुनिक मिजाजवाले विद्यार्थी–बलियाटिक सम्बोधन से चिढ़ाया करते थे। झा साहब ने उस युवक से पूछा, आप बलिया के रहने वाले हैं, यह बताइये, वहाँ की धरती में ऐसा क्या है कि वहाँ के लोग गँवार होते हैं? उस युवक ने छूटते ही उत्तर दिया, श्रीमान निःसंदेह इसका भौगोलिक कारण है। बलिया को बिहार तीन तरफ से स्पर्श करता है। तीन दिशाओं से बिहार की हवा बलिया को लगती है। जबतक यह निकटता रहेगी, बलियावालों की यही स्थिति रहेगी। मेधावी की कद्र करने में झा साहब अद्वितीय पुरुष थे। गँवार सदृश दिखने वाले उस युवक की हाजिर जवाबी से वे इतने प्रीत हुए कि उस साक्षात्कार परीक्षा में वह चुन लिया गया। जिस धरती की मेधाशक्ति ने शंकराचार्य से मोर्चा लिया था, उस धरती की विशिष्ट मनीषा के सामने भोजपुरी प्रतिभा कुंठित नहीं हुई।

''नाचे गावे तूरे तान, सेकर दुनिया राखे मान''– भोजपुरी लोकोक्ति आज के संदर्भ में ज्यादा सही प्रतीत होती है, किन्तु भोजपुरी–भाषी ढोंग और तिड़कम से नहीं, अपने पौरुष और साधना से गर्वोन्नत है। मंगल पांडे, कुँवर सिंह तथा महामहोपाध्याय रामअवतार शर्मा, डॉ. भगवान दास, डॉ. सम्पूर्णानन्द, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, आचार्य शिवपूजन सहाय, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य नलिन विलोचन शर्मा इसके प्रमाण हैं। भोजपुरी धरती की अध्यात्म–सिद्धि ने वेदान्त के अप्रतिम आधुनिक प्रवक्ता स्वामी विवेकानन्द का दिशा–निर्देशन किया था। आप जानते हैं, स्वामी विवेकानन्द पवहारी बाबा से प्रेरणा–प्रकाश लेने गाजीपुर जाया करते थे। बहुत थोड़े लोग जानते हैं, रामकृष्ण परमहंस के अन्तरंग शिष्यों में एक लाटू महाराज थे, जो छपरा के पूर्णतः अशिक्षित और निपट ग्रामीण थे, किन्तु उनके आध्यात्मिक उत्कर्ष से बड़ी–बड़ी हस्तियाँ अभिभूत थीं। लाटू महाराज रामकृष्ण देव के निजी सेवक थे। बाद में वे स्वामी अद्‌भुतानन्द नाम से विख्यात हुए। बांग्ला के प्रसिद्ध औपन्यासिक शरतचन्द्र चटर्जी ने जब उन्हें देखा और अध्यात्म–स्फुरित उनकी वाणी सुनी तो विस्मित होकर कहा कि ये ठाकुर रामकृष्ण देव की प्रतिमूर्ति हैं। एक सम्भ्रांत बंगाली परिवार में सामान्य भृत्य का काम करने वाले निरक्षर भोजपुरिया की उपलब्धि का यह स्तर था। विश्वविख्यात भारतीय कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुन ने गाजीपुर में गुलाब की खेती देखने के लिए अर्थात भोजपुरी धरती की शोभा में नहाने के लिए लम्बा प्रवास किया था।

अधीत सज्जनों, भोजपुरी धरती के वैशिष्ट्य का संकेत देना इसलिए जरूरी था कि इसकी शोभा–शक्ति ही नाना मुद्राओं में लोकगीतों में अभिव्यक्त हुई है। पुरानी उक्ति है 'इल्म से शायरी नहीं आती।' लोकगीत भी खेत में नहीं उगता, पेड़ पर नहीं फलता। वह हृदय से उइकर कंठ में गूँजता है। जब हृदय में गीत उमड़ता है, कंठ अनायास गूँजने लगता है। लोकगीत की प्रसिद्ध विधा

बिरहा में गायक इस बात को बड़े सहज ढंग से व्यक्त करता है–

नाहीं बिरहा कर खेती भइया;
नाही बिरहा फरे डाढ़।
बिरहा बसेले हिरिदिया ए रामा;
जब उमगे ले तब गाव।।

न केवल बिरहा बल्कि सारे लोकगीत हृदय से निकलकर कंठ की सवारी पर दीर्घ काल से गूँजते चले आ रहे हैं। यह तथ्य है कि लोकगीत खेत में नहीं उपजते, पेड़ पर नहीं फलते, लेकिन खेत और पेड़ की हरीतिमा का उच्छल उल्लास हृदय में उद्दीपना पैदा करता है और गीत का जन्म होता है। माटी और प्रकृति की रंग शोभा, तीज–त्योहार का उल्लास, जन्म और संस्कार–अनुष्ठान की मंगल चेतना, सामाजिक अभाव–अभियोग, विकृति–विक्षोभ की उदग्र मुद्रा, जागतिक कलुष बंधन से उत्तीर्ण होने की अकुलाहट और देवाराधन की पुनीत प्रेरणा, दैवीसत्ता को हाँक लगाती सौम्य चेतना, मांसल सौन्दर्य की स्पृहा, उद्यम श्रृंगार की उद्दीपक अभिव्यक्ति अर्थात् जीवन की समग्रता के प्रति संसक्ति और नाना छंदों–सुरों एवं विभिन्न राग–मुद्राओं में उसकी अभिव्यक्ति ही भोजपुरी लोक गीतों की सामान्य पहिचान है।

संवेदना और शिल्प की दृष्टि से प्रत्येक भाषा के लोकगीतों में एक अंश तक समता दिखाई पड़ती है। अन्तर है भाषा–मुद्रा का भौगोलिक, शोभा, आंचलिक रस्म–रिवाज, संस्कार–धारणा और स्वकीय–चाल ढाल के स्तर पर ही विभिन्न भाषा के लोकगीत एक दूसरे से अलग होते हैं। एक ही भाषा क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली में जैसे स्थान–भेद से भाषा–भेद आ जाता है वैसे ही कंठ के माध्यम से यात्रा करने वाले लोकगीतों की बोली बानी और गान शैली में स्थान भेद के चलते स्पष्ट अन्तर दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ सारन और चम्पारण की भोजपुरी और पश्चिमी बलिया, आजमगढ़, गाजीपुर की भोजपुरी में स्पष्ट

अन्तर है। मिर्जापुर, बनारस और बलिया, छपरा, आरा की बोली में यह अन्तर अधिक स्पष्ट है। देवरिया और गोरखपुर की बोली में अन्तर है। स्मरणीय है कि कुछेक वर्ष पहले देवरिया गोरखपुर जनपद का ही अंग था। भाषा विज्ञान की दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट हो जायेगा कि जनपद और अंचल ही नहीं, बल्कि प्रत्येक गाँव की बोली की अपनी स्वकीय मुद्रा होती है। कोस–कोस पर या चार कोस पर बदलने वाली भाषा–मुद्रा को निपढ़ ग्रामीण समझते हैं। ग्रामांचल में दूसरे अंचल की बोली–शैली, उच्चारण, भंगिमा और भाषा रूप पर परिहास–टिप्पणी करते भी लोग दिखाई पड़ते हैं। अस्तु, लोकगीतों के शिल्प विधान में स्थान भेद के कारण स्पष्ट अन्तर दिखाई पड़ता है। अस्तु, लोकगीतों के शिल्प–विधान में स्थान भेद के कारण स्पष्ट अन्तर दिखाई पड़ता है। भोजपुरी लोकगीतों में यह बात बहुत साफ है, दूसरी भाषा के लोकगीतों में भी यह स्थिति होगी। राजस्थान का लोक–जीवन जितना वैविध्यपूर्ण है उतनी ही समृद्ध वहाँ की लोकगीत परम्परा भी है। भाषा–शैली की दृष्टि से विचार करने पर स्थान भेद के साथ भाषा–मुद्रा का अन्तर और स्थानिक राग–रंग की स्वकीय सत्ता वहाँ भी स्पष्ट है।

नाना अभावों और जागतिक प्रत्यूहों से घिरा लोक–जीवन अपनी खुरदरी रूपाकृति और अकृत्रिम बाना द्वारा अभिजात वर्ग की नागर रुचि और तथाकथित विकसित सौन्दर्य बोध को धक्का मार सकता है। किन्तु मानवीय संवेदना की जैसी समृद्धि वहाँ दिखाई देती है, अन्यत्र दुर्लभ है। मानवीय जीवन की सौन्दर्य–ऊष्मा की रक्षा और समृद्धि के लिए प्रेम बुनियादी तत्व है। प्रेम बाग में नहीं फूलता, बाजार में नहीं बिकता। यह हृदय की सम्पदा है। इसके अभाव में मनुष्य अँधेरी रात की तरह भयावह हो जाता है। प्रेमनगर के हाट में साधारण पदार्थ की नहीं, हीरा, मोती और कीमती रत्नों की दुकानें सजी रहती हैं। चातुर प्राणी इस बाजार में घुसकर उत्कृष्ट सौदा करता है और मूरख तथा अरसिक खड़े–खड़े पछताया करते हैं–

प्रेम बाग नहीं बौरे हो प्रेम न हाट बिकाय।
बिना प्रेम के मनुजवा हो जस अँधियारिया रात।।
प्रेम नगर की हटिया हो हीरा रतन विकाय।
चतुर-चतुर सौदा करि गये हो मूरख ठाढ़ पछिताय।।

व्यष्टि चित्त में उदित प्रेम ही समष्टि छन्द की आधारशिला है। विस्तार प्रेम के प्रभाव का परिणाम है, अन्तःवैयक्तिक होना ही उसका स्वभाव है। सन्तान–स्पृहा के मूल में भी विस्तार की आकुल अभीप्सा होती है। अवरोध और अनुर्वरता अमंगल का पीड़क संकेत है। वज्र निरक्षर आदमी भी काठ नहीं होता। विधाता ने उसे हृदय दिया है, जिसमें गहरा रस सागर है, जहाँ हास और रुदन की छोटी–बड़ी लहरें निरन्तर उठती रहती हैं। आदमी में ऐसा अभागा काठ खोजे नहीं मिलेगा जो आँखुआने और फूलने–फलने के लिए बैचेन न हो। सन्तान–स्पृहा अँखुआने और फूलने–फलने फैलने की सहज मानवीय स्पृहा है जिसकी तृप्ति के लिए नाना प्रकार की तपस्या और देवाराधन का भारत में विधान है। भारतीय नारी नारीत्व को अलम नहीं मानती, मातृत्व उपलब्ध करने के बाद ही उसका व्यक्तित्व पूर्ण होता है। इस पूर्णता को अर्जित करने के लिए वह उसी प्रकार तड़पती रहती है जैसे वन की कोयल अपने प्रिय को पाने के लिए वन–वन में तड़पती फिरती है। पुत्र के लिए उसका हृदय वैसे ही दहकता रहता है, जैसे ईंधन से दबी आग भीतर–भीतर सुलगती रहती हैं–

जइसन बन मं के कोइलरी बने-बने कुहुके ले हो।
राम ओइसन जियरा हमरो कुहुकेला, एक रे बालक बिनु रे।
जइसन बोरसी के आगि धीरे-धीरे सुनुगेला हो।
ओइसे जियरा हमरो सुनुगेला, एक रे बालक बिनु हो।

आम जामुन की सघन बारी जैसे एक कोयल के बिना सूनी लगती है, माँ के बिना नइहर का सारा वैभव नीरस लगता है, प्रियतम के अभाव में सेज का वास्तविक श्रृंगार नहीं होता, वैसे ही जननी बने बिना गोद की अशुभ रिक्तता नहीं भरती–

एक सो अमवा लगवती सवा सौ जामुन हो।
आहो रामा तबहूँ न बगिआ सोहावन एक रे कोइलि बिनु।
नइहर में पाँच भइया त सात भतीजा बाड़े हो।
आहो रामा तबहुँ न नइहर सोहवन एक रे मयरिया बिनु।
एक कोरा लिहलो मैं भइया दूसरे कोरा भतीजवा हो।
आहो रामा तबहूँ न गोदिया सोहावन अपना बालक बिनु।
पलंग पर सेजिया डसवलों त फूल छितरइलों हो।
आहो रामा तबहूँ न सेजिया सोहावन एक बलम बिनु।

संतान–सुख से वंचित भारतीय नारी का हृदय ग्लानि से भरा रहता है। इस अभिशाप से उबरने के लिए वह कठोर तपस्या करती है। उसकी तपस्या जब तक फलवती नहीं होती सृष्टि का सारा सौन्दर्य उसके लिए बेमतलब होता है। भोजपुरी सोहर में एक अभागिन नारी का चित्र है। यमुना में जल बिहार करती युवतियों की दृष्टि उनके उल्लास से उदासीन होती हुई एक स्त्री पर पड़ती है। उसके दुःख का कारण पूछा जाता है, क्या तेरे सास–ससुर ने तुझे दुःख दिया है या नइहर की याद सता रही है? कहीं तुम्हारा पति तुम्हें अकेला छोड़कर विदेश तो नहीं चला गया है? किस दुःख से तू रो रही है? अभागिन स्त्री सहज सहानुभूति पाकर अपनी व्यथा खोलती है; न तो मेरे सास–ससुर ने कष्ट दिया है न मेरा नइहर दूर है और न मेरा प्रियतम विदेश गया है। उदास कोख–सूनी गोद मेरी एकमात्र व्यथा है–

चलहू न सखिया सलेहरि जमुना नहायहु हो।
सखिया जमुना के निर्मल नीर कलस भरि लावहु हो।।
केहु सखी जल भरे केहू सखी मुँहवा धोवली हो।
आहो केहू सखी ठाढ़े नहाई तिरिया एक रोवेली हो।।
की तोहे सासु–ससुर दुःख देले नइहर दूर बाड़े हो।
बहिनि किया तोर कन्त विदेस कवन दुःख रोवेली हो।।

ना मोरे सासु–ससुर दुःख देले ना नइहर दूर बाड़े हो।
नाहि मोरे कन्त विदेस, कोखी के दुःख रोइली हो।।

पारिवारिक शिष्टाचार की उपेक्षा करने से यह दुर्भाग्य ग्रस्त हो गयी है। सास–ससुर का सम्मान करना, भसुर से न लजाना और ननद को दुलार न देना ही बहू का अपराध है। उसे दंड मिलता है कि संतान सुख से वह वंचित हो जाती है–

सासु–ससुर नाहि मनलू ननद ना दुलारेलु रे
भसुर अलोत देई ना चललू, बाझिनि होइ गइलू नु रे।।

दारुण अभिशाप से उबरने के लिए बहू अपने आचरण को बदलने की प्रतिज्ञा करती है कि सास–ससुर का आदर करूँगी, भसुर को अपेक्षित सम्मान दूँगी, ननद को नेह–छोह से नहलाऊँगी–

सासु–ससुर अब मानबि, ननदी दुलारबि नु रे।
ललना भसुरा अलोत देइ चलबि, बाझिनि रहि गइलि नु रे।।

सोहर गीत सन्तान के अभाव, सम्भावना और उपलब्धि को व्यंजित करते हैं। घर–आँगन में ही नहीं, सगे–सम्बन्धियों के घर दूर भी कोई स्त्री जब अन्तः सत्वा होती है तभी से सम्भावना उल्लास सोहर गीत के माध्यम से आँगन में गूँजने लगता है। सम्भावना की अगुवानी गीत द्वारा की जाती है। सृष्टि का स्वागत गीत द्वारा किया जाता है। पुत्रोत्पत्ति के साथ ही समूह–कंठ से मुखर सोहर आँगन की दिशा–दिशा को उल्लास से भर देता है। सर्वाधिक उछाह सासु और ननद में दिखाई पड़ता है। अपनी सीमा भूलकर सासु अपना उल्लास प्रकट करती है। नवजात शिशु के रूप में देखकर वह उल्लासित कंठ से कहती है कि पान जैसी पतली और पुष्प जैसी रूपवती बहू का पुत्र भला इतना सुन्दर कैसे नहीं होता। फिर उसे लगता है कि बहू का सुन्दर होना ही अलम नहीं है, उसने जरूर कोई विशेष अनुष्ठान किया है, तब इतना सुन्दर

पुत्र–रत्न कोख से पैदा हुआ है। अगराकर वह बहू से पूछती है कि उत्तम पुत्र रत्न पाने के लिए तूने कौन–कौन से तप किये? बहू जवाब देती है कि शीत से ठिठुरते माघ–पूस में मैंने गंगा–स्नान किया और अग्नि ताप का सेवन नहीं किया, सूर्यनारायण को विनीत होकर प्रणाम किया। यह सुन्दर बालक इसी तपस्या का फल है। ननद पूछती है इतने सुन्दर पुत्र को जन्म देनेवाली भाभी तूने कौन–कौन से फल खाये थे?

पनवा अइसन धनि पातरि, कुसुम अइसन सुन्दर हो।
मोरे रामा उनहूँ के भइले नन्दलाल होरिलवा बड़ा सुन्दर हो।।
मचिया बइठलि उत सासु बहुआ से पूछेली हो।
आहो बहुआ कवन–कवन–तप कइलू, होरिलवा बड़ा सुन्दर हो।
माघ ही पुस के महिनवाँ त गंगा नहइली अगिनि नाही तापीले हो।
सासु निहुरि के सुरुज गोड़ लगली, होरिलवा भइले सुन्दर हो।
मचिया बइठलि उत ननदी, बहुआ से पूछेली हो।
आहो भउजी कवन–कवन फल खइलू, होरिलवा बड़ा सुन्दर हो।
खइलो मैं अमवा इमिलिया अवरु घवद केरवा नु हो।
आहो फोरि–फोरि खइलो नरियरवा होरिलवा भइले सुन्दर हो।।

अंतः सत्वा स्त्री के नेम–व्रत और स्वाभाविक भोजन–रुचि का इस सोहर में संकेत है। माताओं को अनुभव है, अन्तः सत्वा काल में खान–पान की रुचि बदल जाती है। इस दशा–विशेष को लक्ष्य कर भी कई सोहर गाये जाते हैं। पुत्रोत्पत्ति के बाद गाये जाने वाले सोहर में पुत्र की सर्वांगीण उन्नति की कामना प्रार्थना का सहज संकेत मिलता है। यह स्वाभाविक है कि जैसे दीये बिना घर और सिन्दूर बिना मांग सूनी लगती है वैसे ही पुत्र बिना गोद सूनी लगती है। मगर गोद का उल्लास यदि देश की सेवा में नियोजित न हुआ तो कोख बदनाम हो जाती है–

सून लागे दिया बिनु मन्दिल, मांग सेनुर बिनु हो।
ललना ओइसन सून तिरिया गोद, से एक बालक बिनु हो।
सूने लागे महल अटरिया, अवरू खेत धरतिया नु हो।।
ललना नाहीं नीक लागे सुख भोग, के एक संतति बिनु हो।

———

पुतवा के देवो भारत मइया के सेउवा में, मातवा के सेउवा में हो।
ललना पूत करिहें देसवा के काम, त जनम सुफल होइहें हो।।
मनवा में इहे अभिलाख, इहे एक साध, इहे एक सधिया नु हो।
ललना पूत मोर होवे देस सेवक, राम से बिनति करों हो।।

———

देहु देहु सखिया असीस, ललन मुँहवा चूमहू हो।
रामा गोदिया में लेई लपटावहु, हियरा जुड़ावहु हो।
'भारत माता' के होइहें सेवकवा, त मोर पूत हो।
रामा अस पूत जुग जुग जीयसु, त इहे हम असीसत हो।।

शिशु के विकास के साथ नये–नये संस्कार से उसे सम्पन्न किया जाता है। प्रत्येक संस्कार के साथ गीत का विधान जुड़ा रहता है। प्रत्येक संस्कार के गीत का छन्द और गान–मुद्रा बदलती रहती है। जन्म के बाद विवाह सबसे बड़ी मांगलिक घटना है। सोहर और विवाह गीत के बीच में भी अनेक अनुष्ठान से जुड़े गीत गाये जाते हैं। किन्तु विवाह–गीत का वैविध्य और लालित्य अधिक समृद्ध है। किशोर अवस्था की देहरी पार करने के बाद ही कन्या के लिए उपयुक्त वर की तलाश और विवाह की चिन्ता माता–पिता को सताने लगती है। कन्या दान की जैसे महत्ता भारत में है वैसी अन्यत्र नहीं है। कन्या दान सबसे बड़ा यज्ञ और दान माना जाता है। इसलिए पुण्यार्जन के लिए और अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए जिसे कन्या नहीं होती अपने किसी आत्मीय परिवार की कन्या को नैष्ठिक ढंग के दान करता है। एक तरफ यह पुनीत भावना है। दूसरी तरफ तिलक दहेज की समस्या इतनी जटिल है कि

कन्या–जन्म को अशुभ माना जाता है। वर की तलाश में पिता जब क्लांत हो जाता है और बेटी बाढ़ की तरह बढ़ने लगती है, माता का हृदय दुःख से तड़पने लगता है जैसे बेटी को जन्म देकर उसने अपराध कर दिया हो। उसकी पीड़ा इतनी तीव्र होती है कि उसका उन्मथित चित्त हाहाकार कर उठता है। यदि पहले पता होता कि मेरी कोख से बेटी का जन्म होगा तो काली मिर्च पीसकर पी जाती जिसकी कटु उष्णता से मेरी रचना की सम्भावना आधार क्षेत्र में समाप्त हो जाती। बेटी को लक्ष्य कर माँ कहती है, तेरे जन्मते ही घर में भादो की अँधेरी रात उतर आयी, कि सास–ननद प्रसूति–गृह में दीया तक नहीं जलाती और पतिदेव भी विमुख होकर कुबोल बोलने लगे हैं। घर–आँगन में ऐसी उदासी उतर आयी है कि लगता है देवता कहीं अंते चले गये हैं। बेटी जब तक तेरा विवाह नहीं हो जाता, तेरे बाप का बोझ नहीं उतरेगा और उनके व्यवहार की रुखाई बनी रहेगी। भगवान न करे किसी को भी बेटी हो–

जाहि दिन बेटी हो तोहरो जनम भइले, भइली भदउआ के रात ए।
सासु ननद घरे दिअरो न बारेली, उहो प्रभु बोले ले कुबोल ए।
जाहि दिन बेटी हो तोहरो बिआह होइहें, बाबा के हिरदया जुड़ाइ ए।
धन–धन बेटी हो तोहरो जनम भइले, देवतन लिहले बसेढ़ ए।

———

जाहु हम जनिती कि धिया कोखि जनमिहें, पिहितीं हम मरिचि झझार ए।
मरिचि के झारे झुरे धिया मरि जइती, छुटि जइते गरेहुआ संताप ए।

एक ओर यह ग्लानि है दूसरी ओर बेटी का जन्म न हो तो आँगन सूना–सूना लगता है। माँ की साध तड़पती रहती है। तोहरे बिन सून आँगनवा ए बेटी। विवाह प्रसंग के अधिकांश गीत कारुणिक हैं। माता दिन–रात बेचैन रहती है कि सयानी बेटी की माँग में सिन्दूर कब पड़ेगा। कन्या के पिता को वह वर ढूँढने के लिए प्रेरित करती रहती है। अपने दामाद के बारे में हर स्त्री की आकांक्षा ऊँची होती है। भोजपुरी माता अपनी कन्या के लिए ऐसा वर खोजने

को कहती है जो सर्वगुण सम्पन्न हो और जिसका ध्यान बराबर देश के कल्याण पर ही केन्द्रित हो, सुदेसिया वर की अभिलाषा भोजपुरी चरित्र के सर्वथा अनुरूप साध है–

हमरे धिया के जोग बर खोजु बाबा हो,
धिया मोर भइली सेयान हो।।

———

अइसन धिया बाबा मोर बढ़ि गइली,
जइसे बढ़े दुजिया के चान हो।
पनिया पचत नाही बाबा मोरे पेटवा हो,
सोचत साँझवा बिहान हो।
धिया से उरिन हम कब अपना होइबो हो,
कब करब बाबा कन्यादान हो।

———

अइसन वर बाबा खोजलू सुदेसिया हो,
हरदम देस के धियान हो।
देसवा के दुख देखि जियरा पसीजे हो
जे हो निपुन गुनवान हो।।

स्वदेशी की चेतना अनेक लोकगीतों में मुखर है। सामाजिक कुरीतियों पर जगह–जगह कटाक्ष है। बाल–विवाह और विसंगत–वय–विवाह के प्रतिरोध में विवाह गीत में आवाज सुनाई पड़ती है–

बाल बिआह जनु करू मोरे बाबा हो,
बाल बिआह दुख के खानि हो।
बैलवा से बछिया ना जोरहु बाबा हो,
मानहु बिनती हमार हो।।

लड़का विवाह करने जा रहा है। मंगल कामना के साथ माता उसे विदाई देती है और छोह भरा आग्रह करती है कि तुम अपनी होने वाली पत्नी के गाँव जा रहे हो, मेरे दूध का मूल्य तुम्हें चुकाना है। पुत्र जवाब देता है कि दूध का मूल्य चुकाना असम्भव है। अपनी पत्नी को तुम्हारी सेविका बनाकर और स्वयं पिताजी की सेवा करके जन्म देने का कुछ मूल्य चुका सकूँगा।

जाहु तु हु जइब ए बबुआ सुहवा का देसवा, दुधवा के निखि मोहि देहु ए।
दुधवा के निखिया ए आमा दिहलो ना जाला, जनम के निखि मोहि से लेहुए।
हम त होइब ए आमा बाप के सेवइत धनि होइहे दासी तोहार ए।।

इसी भाव को एक दूसरे गीत के रूप में गाया जाता है–

जात है पूता तू गौरी बियाहन गौरी बियाहन
दुधवा के मोल दइ जाउ।
गइया के दुधवा त हटिया बिकाला त बटिया बिकाला,
माई के दूध अनमोल।

गीत द्वारा वर की विदाई की जाती है, गीत द्वारा उसका स्वागत किया जाता है। पूरे विवाह–अनुष्ठान में प्रसंग–परिवर्तन के साथ–साथ गीत की मुद्रा और गान–शैली बदलती रहती है। बीच–बीच के करुण सुर जिसके कान में पड़ते हैं भीतर से हिला देते हैं–

दिनवा हरेलू ए बेटी भूख रे पिआसिया,
रतिया हरेलू सिर पगिया नु रे।

कण्व ऋषि का हृदय उफनकर आँखों से बरसने लगा था। वह कन्या विदाई प्रसंग बड़े प्रभावशाली रूप में भोजपुरी गीतों से व्यंजित हुआ है। रुदन स्वर में माँ कहती है, कन्या वियोग को मेरा हृदय सह लेता है कि पत्थर का बना है, भला होता यदि हृदय फट जाता 'आरे पथल के छतिया हो बेटी बीहरि बलु जाई।' विदाई का दृश्य व्यक्ति–व्यक्ति और दिशा–दिशा को रुला देता है। पिता के रोने से गंगा में बाढ़ आ जाती है, माता के रोने से अन्हरिया छा जाती

है, भाई के रोने से उसकी धोती भींग जाती है, मगर कठकरेजी है भाभी, जिसकी आँखों में लोर नहीं छलकता–

बाबा के रोअले गंगा बढ़िअइली
आमा के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भींजे
भउजी नयनवा न लोर।।

विदा होती बेटी से माँ आग्रह करती है, बेटी एक बार रोज आ जाया करना, पिता कहता है कि रोज न सही कम से कम छः महीने पर एक बार जरूर आया करना; भाई दुलार का जोर लगता है कि मेरे घर कल ही विशेष अनुष्ठान होने वाला है, मगर भउजाई चाहती है कि ननद जल्दी दूर हो–

आमा कहेली बेटी नित उठि आव, बाबा कहेंले छव मास।
भइया कहेले बहिना काल्हे परोजन, भउजी कहेली दूर जाव।

ननद भउजाई के कटु रिश्ते के प्रति इन गीतों में कटाक्ष है मगर हकीकत यह है कि बेटी की विदाई पर राह–घाट तक रोने लग जाते हैं। विवाह के समय गाली और झूमर गीत भी गाये जाते हैं, जिसमें नारी हृदय का उल्लास उत्तान होकर झूमता–उछलता कारुणिक वातावरण को तोड़ता रहता है। झूमर द्रुत लय में विभिन्न अवसरों पर गाया जाने वाला गीत है जो समूह नारी कंठ से गूँजता रहता है–

हाजीपुर के हाट में हेराइल हो मोरा सोना के झुलनिया।
सासु मोर मारे ननदि गरिआवे सइयाँ बाँस कोइनिया हो।। मोरा सोना के....
सासु मोर खोज ननदि खोजवावे, पिया ढूँढे नाक के निसनिया हो।। मोरा....

झूमर गीत उच्छल श्रृंगार का गीत है जो नारी कंठ से ही गाया जाता है। श्रृंगार चेतना का ही गीत है बिरहा और चैता जो पुरुष द्वारा गाया जाता है। सोहर नारी कंठ का गीत होते हुए भी यदा–कदा पुरुष कंठ से भी उल्लास

मुखर होता है। जैसे होली और चैता गाहे–बगाहे औरतें भी हुलसकर गाती हैं। गोड़ऊ गीत पालकी ढोने वाले पुरुषों द्वारा गाये जाते हैं। गोड़ऊ श्रृंगार उद्दीप्त गीत हैं जो श्लीलता की सीमा का प्रायः अतिक्रमण कर जाते हैं। इसी प्रकार बिरहा अहीरों का सजातीय गीत है। नट, दुसाध और चमार–डोम भोजपुरी क्षेत्र के महत्वपूर्ण अंग हैं। इनकी जीवन शैली और रस्म–रिवाज औरों से भिन्न होते हैं। इनके देवी–देवता भी कुछ अलग होते हैं। यह पृथकता उनके गान वाद्य में भी दिखाई पड़ती है। अस्पृश्य समझी जानेवाली जाति के समृद्ध कला–लोक पर रसज्ञ लोगों की आत्मीय दृष्टि पड़नी चाहिए। इन जातियों विशेषतः चमारों के गीतों में शौर्य, श्रृंगार और धर्म की निर्गुणिया भावना दिखाई पड़ती है। भोजपुरी लोकगीत पर श्रृंगार का ही साम्राज्य है मगर दूसरी कठोर जागतिक समस्याओं की ओर से आँख मूँदकर ये गीत नहीं चलते। जीवन की कठोरता, कुरूपता और कुरीति का यथार्थ चित्रण इन गीतों में दिखाई पड़ता है। कुँवर सिंह जैसे भोजपुरी वीर को उपजीव बनाकर अनेक गीत रचे गये हैं। करुण रस की तो भोजपुरी लोकगीत में इतनी तीव्र व्यंजना हुई है कि पत्थर भी पसीज जाय। एक बड़ा प्रसिद्ध गीत है। अपने पति के वियोग पर हरिणी विलाप करते एक राही को अपना दुर्भाग्य निवेदित करती है, ना जाने किस कसूर से बहेलिये ने मेरी सेज सूनी कर दी। राही भाई, मेरी ओर से निहोरा करके बहेलिये से मेरे प्रियतम की हड्डी दिलवा दो, चाम–मांस को वह भले ही बेच दे। मैं उन हड्डियों को लेकर यमुना के घाट पर सती हो जाऊँगी–

पानी के पिआसल हरिनवा, जमुनवा घाटे रे जाय।
बोअलो मैं चीनवा हे रामा हरिनवा चरि रे जाय।।
बाट बटोहिया भइआ तू हूँ रे भाय।
एहि राहे देखुआ हरिनवा, बहेलिया ले ले रे जाय।।
देखई मैं देखई हे पातरि हाजीपुर के रे हाट।
हाथ गोड़ बन्हले बहेलिया, हटिया ले ले रे जाय।।
पग तोरे थाके बहेलिया हथवा लागे घून।

कवनों कसरवा बहेलिया मोरी सेजरिया कइले रे सून।।
चाम मासु बेचहि बहेलिया हाड़वा दिहे रे मोर।
ओही हाड़ लेइ सती होइबों एहि जमुना के तीर।।

वियोग–व्यथा द्वारा करुणा जगाने वाले कुछ मार्मिक गीत महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपने जनपद आजमगढ़ के लोक–कवि बिसराम द्वारा रचित संग्रहीत किया था। भरी जवानी में विधुर होने वाले बिसराम ने अपनी पत्नी की याद में तड़प–तड़प कर गीत रचते २६ वर्ष की उम्र में संसार से विदाई ले ली थी। राहुलजी जैसे महान तत्व चिन्तक को भी बिसराम के गीतों ने भावुक बना दिया था, उनके हृदय प्रदेश को बुरी तरह हिला दिया था। ठीक इसी प्रकार अपने समय के उर्दू के सबसे बड़े शायर फिराक गोरखपुरी को भोजपुरी लोक–गीत की कड़ी ने एक अच्छी नज्म रचने को प्रेरित कर दिया था। 'तराना–ए–इश्क' के मूल में भोजपुरी लोक–गीत का यह टुकड़ा है–

जलवा चमके उजरी मछरिया रन चमके तरवारि
सभवा में चमके मोरे सइयाँ की पगड़िया सेजिया प बिंदिया हमार।

बसन्त ऋतु में भोजपुरी चैता का मादक बोल सुनकर काठ में भी बसंत की थिरकन पैदा हो जाती है–

रामा चइत के निदिया बड़ी बइरिनिया हो रामा।
सुतलो बलमुआ नाही जागे हो रामा (सुतलो बलमुआ)

पूर्वी गीत भी चैता जैसा ही मादक और मोहक भाव से सम्पन्न होता है। पूर्वी का छन्द भी बड़ा बेगवान होता है–

जहिया से सइयाँ मोरे छुवले लिलरवा
हो दुर्लभवा भइले ना मोर बाबा के नगरिया। कि हो दुर्लभवा भइले ना।।

इसी प्रकार एक पूर्वी गीत में गौरा की सखी उसे सम्बोधित कर कहती है कि भला किस बउड़म के लिए तूने इतनी तपस्या की? उसका न घर–दुआर है

और न खाने–पहनने का कोई सिलसिला है और न तो कोई काम धंधा करता है। भांग–धतुरा खाता है, बाघ की छाल पहनता है, गाछ के नीचे सोता है और डमरू बजाता रहा है। ऐसा बउड़म किस काम आयेगा? उसे पाने की अपनी प्रतिज्ञा छोड़ दे–

बउरहवे लागि ना हो गउरा, बउरहवे लागि ना।
तू न कइलु अतना तपवा, बउरहवे लागि ना।
नाहि उनकर घर गउरा, नाहि बा दुआरवा।
कि सूते ओते ना, ओहि गछिया के छहियाँ।। कि सूते ओते ना।
खाये के ता खाले भोला, भाँग ओ धतूरवा।
कि पहिरे ओहिरे ना, ओहि बाघवा के छलवा।। कि पहिरे ओहिरे ना।
कबहू ना करे भोला, एक हूँ उदामवा।
कि नाचे लागे ना, लेके डमरू के हथवा।। कि नाचे लागे ना।
अइसन बउराह अइहें, कवनो ना कामवा।
कि तेजि देहु ना, गउरा आपन पारानावा।। कि तेजु देहु ना।

न केवल पूर्वी, अधिकांश लोक–गीतों में विशेषतः विवाह के गीत और सोहर में शिव, राम और कृष्ण का जीवन–प्रसंग आया है। भजन और पराती में तो विभिन्न देवताओं का प्रसंग है ही। शीतला माई के स्वतंत्र गीत भी विशेष अवसर पर गाये जाते हैं। धार्मिक गीतों की बड़ी विशेषता यह है कि इनमें उदार मानवीय भावना छलकती रहती है। कार्तिक मास में गंगा नहाने वाली महिलाओं के कंठ से सुनाई पड़ता है कि भगवान को पाने के लिए जप–तप और गंगा स्नान पर्याप्त नहीं है। हरि को पाने की अनिवार्य शर्त है अपने जैसा सबको समझना, सबकी वेदना–संवेदना का साझीदार बनना–

नाहीं हरि मिलिहें जोग–जाप से,
नाही हरि गंगा नहइले।
अपना जीव अस अनकर जनीह
तब हरि मिलिहें हे राम।।

इसी प्रकार भोजपुरी अंचल में सोहनी करती हुई ग्रामीण बाला स्वरूप–अनुसंधान की आवाज टेरती रहती है–

सेर भरि सतुआ बरिस दिन खइबो,
सइयाँ के जाये ना देबो बिदेसवा।

भोजपुरी क्षेत्र में कदाचित् पूरे भारत में प्रत्येक संस्कार के साथ गीत का विधान जुड़ा रहता है। प्रत्येक संस्कार के गीत का छन्द और गान–शैली बदलती रहती है। गीतों के माध्यम से पूरे वातावरण में विशिष्ट सत्वरता आ जाती है और मांगल्य की वर्षा से घर आँगन, खेत–खलिहान, सिवान–बथान समृद्ध हो उठते हैं। भोजपुरी क्षेत्र के सारे पर्व, सारे हिन्दू संस्कार कहना चाहिए, सारी क्रिया गीत–भित्तिक है। भोजपुरी लोक–जीवन में छन्द का ऐसा आधिपत्य है कि गाली गलौज और लड़ाई–झगड़े की भाषा में भी लय और छन्द छलकता रहता है। हिन्दू कर्मकाण्ड के समृद्ध विधान के बावजूद गीत से विच्छिन्न हो जाने पर जन्म से विवाह तक के सारे हिन्दू संस्कार निष्प्राण हो जायेंगे। ऐसा गीतबद्ध लोकजीवन है भारत के भोजपुरी क्षेत्र का। चतुर कर्मकांडी पण्डित इस तथ्य से परिचित होता है कि गीत के बिना कर्मकाण्ड की सारी विधि अपूर्ण है इसलिए प्रायः देखा यह जाता है कि प्रसंग–परिवर्तन के साथ ही वह महिलाओं को प्रासंगिक गीत द्वारा मंगल अनुष्ठान को समृद्ध करने की प्रेरणा बीच–बीच में देता रहता है।

भोजपुरी लोकगीतों का प्रकृति के यथार्थ सौन्दर्य से, परिवर्तनशील प्रकृति मुद्रा से परा चेतना से, धर्म भावना से घनिष्ठ सम्बन्ध है। सामाजिक विकृति–विसंगति का नितांत यथार्थ चित्र भोजपुरी लोक–गीतों में दिखाई पड़ता है। आर्थिक अभाव के चलते बाप जब अपनी जवान बेटी को अपात्र के हाथ बेचता है तब लोककवि की संवेदना आहत होकर उद्वेलित हो उठती है। लोकनर्तक और कवि भिखारी ठाकुर के गीतों में उक्त प्रसंग की मार्मिक अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार वय–विसंगत विवाह की विकृति को लेकर भोजपुरी

में असंख्य गीत सुनाई पड़ते हैं। आर्थिक अभाव से पीड़ित और निरुपाय होकर अपना गाँव घर छोड़ने की विवशता को लेकर विरह–विदग्ध कंठ के स्फुरित अनेक गीत भोजपुरी क्षेत्र में गूँजते रहते हैं।

सोहनी, रोपनी, बारहमासा, जाँतसार, कजली, बहुरा, पीड़िया, झूमर, पूर्वी, चैता और बिरहा गीतों में भोजपुरी लोक हृदय का सही रूप अर्थात् धरती अनुराग प्रगाढ़ लोक संसक्ति सहज प्रकृति प्रेम, उल्लासयुक्त कर्म–रुचि, उच्छल सौन्दर्य स्पृहा, मादक श्रृंगार चेतना, जागतिक प्रपंच तथा सौन्दर्य के बीच से स्वरूप–अनुसंधान की तीव्र अभीप्सा, मानवीय संवेदना अपनी समग्रता में दीप्त है। सामान्य कविता और गीत की तुलना में लोकगीत की सम्प्रेषणीयता अधिक सहज और तीव्र होती है। लोक–गीत का रचनाकार अपनी कीर्ति के लिए नहीं भूखा होता, बल्कि उसकी एक ही भूख होती है कि उसकी संवेदना और वाणी कंठ–कंठ में थिरकती रहे; जन–जन के मानस को उसका गीत स्पर्श करे और लोक–कंठ में उसकी आवाज बस जाय। इसलिए लोकगीतों के प्रणेता का नाम, ग्राम अज्ञात होते हुए भी उसकी वाणी लोक हृदय में युगों से अक्षय शासन करती चली आ रही है, वह अपने सौन्दर्य और संवेदना शक्ति द्वारा अनन्त काल से लोक–जीवन के रस–कोष की रखवाली करती आ रही है।

मित्रों, शुरू में मैंने भोजपुरी धरती की स्वकीयता की संक्षिप्त इंगिति दी है। भोजपुरी चरित्र की ग्रहीता शक्ति बड़ी बलवती होती है। नये ज्ञान–विज्ञान के साथ चलने वाला प्रदूषण मानवीय संवेदना–ऊष्मा को धीरे–धीरे राख में बदल रहा है। जिस भोजपुरी धरती ने उन्मुक्त ज्ञान गवाक्ष वाले महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे मनीषी तथा विसराम और भिखारी जैसे लोक कवि को जन्म दिया था, वहीं देश के दूसरे भू–भाग की तरह अब बेहया का जंगल उगाने लगी है। वर्तमान राजनीति की विकृति–लीला की निर्लज्ज मुद्रा वहाँ भी दिखलाई पड़ने लगी है।

व्यावसायिकता की प्रदूषित बयार वहाँ के सहज सौन्दर्य को मारने लग गयी है। भोजपुरी लोक–गीतों पर आज फिल्मी राग–रंग चढ़ने लगा है। उसकी स्वकीयता एक अंश तक विक्षत हो गयी है, लोक कंठ टूटने बिखरने और बेपहिचान होने लगा है। लोक–संस्कृति ही समाज और राष्ट्र की भित्ति है। इसके कमजोर होने पर राष्ट्र भहराकर गिर जायेगा। इसलिए अशुभ बयार की अकुंठ लीला को प्रतिबंधित करने का सामूहिक प्रयास होना चाहिए। भारतीय संस्कृति पर पहले भी विजातीय आक्रमण हुए थे, जो बाहर–बाहर से हमें धक्का मारकर निष्फल मुद्रा में अपने मुकाम लौट गये थे। भारतीय संस्कृति की पाताल प्रविष्ट जड़ों को हिलाना खेल नहीं है। मेरे गुरु आचार्य पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ऊँट की एक कहानी सुनाया करते थे। नाना पकवान व्यंजन से भरे एक घर में कहीं से एक ऊँट आ घुसा। घर में लजाधुर नयी बहू थी। ऊँट अपने स्वभाव के मुताबिक सब पदार्थों को तहस–नहस करने लगा। अपने दायित्व बोध से वह बेचैन हो उठी मगर नयी बहू आवाज कैसे करे। कोने में एक सूप पड़ा था। घर के लोगों को बुलाने और ऊँट को भगाने के लिए सूप पीटने लगी। उसकी असमर्थता पर ऊँट बलबलाकर हँसा। बोला, मेरी पीठ पर बड़े–बड़े अगड़धत्त के नगाड़े बज चुके हैं, सूप मेरा क्या कर लेगा? बहू हार गयी। विजातीय प्रदूषण का हमला भारतीय लोक–संस्कृति का कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा। इसकी पाताल भेदी जड़ें समय के बाहरी आघात से मरेगी नहीं, सामयिक अंधड़ ऊपर–ऊपर से निकल जायेगा, उसकी ऊर्जा पल्लवित–पुष्पित होती रहेगी। भोजपुरी लोकगीत की समृद्धि को फिल्मी राग उजाड़ नहीं सकता। भोजपुरी लोकगीतों का खोइंछा खाली नहीं होगा। यह मांगल्य आपूरित खोइंछा है जो सदार गमकता रहेगा, ''जीरवा से बन्हली खोइंछवला। खोइंछा गमकत जाइ।''

Hkkt ijh {k=k e Lor=rk lxke e tuHkkxhnkjh ,o tu pruk

शम्भू सिंह

बिहार विद्रोहियों की सरजमीन रही है। 1857 की क्रांति से लेकर सम्पूर्ण क्रांति तक विद्रोह की आवाज कहीं से भी उठी हो, मुकाम मिला हैं बिहार आकर ही। महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में पूरे देश की जनभागीदारी रही है। आजादी का नेतृत्व कई विचारधारा को मानने वालों ने किया हरेक का एक ही लक्ष्य था, अंग्रेजी की गुलामी से मुक्ति। देश के विभिन्न भागों से आवाज उठी। एक आवाज मंगल पांडे ने लगाई। बात बहुत दूर तक तो नहीं जा पाई। लेकिन ठहरे हुए पानी में हलचल तो पैदा हो ही गई, जो 15 अगस्त 1947 को जाकर रूकी। मंगल पांडे की आवाज को बल मिला भोजपुर में, जहां बाबू वीर कुंवर सिंह ने अंग्रेजों के खिलाफ बिगुल फूंक दिया।

डॉ राजेश्वरी शांडिल्य कहते है–''गांधी जी तथा उनके द्वारा संचालित स्वतन्त्रा संग्राम आंदोलन का प्रभाव भोजपुरी क्षेत्र में देश के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक रहा, क्योंकि इस आंदोलन का प्रारंभ गांधी जी ने 1917 में चम्पारण से किया था और इसकी पूर्णाहुति 1942 में बलिया जिले में अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंककर अमर शहीद चित्तू पांडे ने किया। इन दो ध्रुवों के मध्य लगभग 25 वर्षों की संघर्ष गाथा अपने अंतर्मन में अनेक घटनाओं के बिम्ब–प्रतिबिम्ब संजोए हुए है।'' गांधीजी ने अपने आत्म कथन में एक जगह उल्लेख भी किया है– ''बिहार ने ही मुझे हिन्दुस्तान में जाहिर किया। उससे पहले तो मुझे कोई जानता भी नही था। पहले मैं भी जानता नहीं था कि चम्पारण कहां है, लेकिन जब यहां आया, तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं बिहार के लोगों को सदियों से जानता था और वो मुझे पहचानते थे।''

डॉ राजेश्वरी शांडिल्य ने अपने एक लेख में लिखा है– ''गांधी दर्शन के विकास में भोजपुरी क्षेत्र एक और दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सन् 1920 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्ययनरत लगभग 11 छात्रों ने गांधी जी के असहयोग आंदोलन में भाग लेने के लिए अपना अध्ययन त्याग कर काशी में भारतवर्ष का प्रथम 'श्री गांधी आश्रम' की स्थापना की।''

गांधी संग्रहालय पटना के सचिव डॉ रजी अहमद कहते है–''भारतीय इतिहास में बागियों की अनेक धारा रही है, जिसने विदेशी शासन को कभी स्वीकार नहीं किया। ऐसी ही एक प्रबल धारा भोजपुर के राजपूतों की रही है, जिसके नायक बाबू कुंवर सिंह थे।'' इसमें कोई दो मत नहीं है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ही नहीं किसी भी क्रांतिकारी कदम को बिहार की जनभागीदारी ने नई पहचान दी। यही कारण है कि सिपाही विद्रोह से शुरू हाने वाले गदर का केन्द्र जगदीशपुर बन गया। इस सरजमीन ने जालिम हुक्मरानों को हमेशा ललकारा हैं जब मुगल अपने शिखर पर थे तब इसी बिहार के लाल 'शेर शाह सूरी' ने मुगलों के मंसूबों को नाकाम किया। जब अंग्रेज आए तो भला बिहारी कैसे खामोश बैठ जाते?

बंगाल के आख़री शासक नवाब सिराजुद्दौला की पैदाईश भी बिहार के पटना में हुई थी, जहां वो काफी दिनो तक रहे, फिर जब 1757 में अंग्रेजो के विरोध की बात आई तो सबसे पहले वही मैदान में गए। पर अपनों की गद्दारी की वजह कर बिना लड़े ही जंग हार गए और शहीद हो गए।

अंग्रेजों ने 1760 में बंगाल के नवाब मीर जाफर को बेदखल कर उसके दामाद मीर कासिम को बंगाल की नवाबी दे दी। वह अंग्रेजों के अंतहीन लालच और हस्तक्षेप से तंग आ गया था और वह अंग्रेजों की चाल से बचने के लिए मुर्शिदाबाद को छोड़ उसने अपनी राजधानी मुंगेर बना लिया, जो बिहार का एक जिला का मुख्यालय आज भी है। अंगेजों से उसकी ठन गयी और इसने बिहारियों की एक फौज बना कर 1764 में बक्सर में अंग्रेजी से जंग लड़ा और हार गया, जिसके बाद बंगाल पूरी तरह अंग्रेजों के हिस्से में चला गया।

इसके बाद बिहार में, जो उस समय बंगाल का हिस्सा था, अंग्रेजों के खिलाफ बहुत सारी बगावत हुई जिसके बारे में आम तौर पर लोगों को कम जानकारी है और इसकी अगुवाई बिहार के ही जमींदारों, हाकिमों, नवाबों, नौजवानों, कबाईलीयों (जनजाति), उलेमाओं (मौलवी), सन्यासियों (संत) और खेतिहर (किसान) लोगों ने की और मौका देखते ही अंग्रेजों के खिलाफ भी हुआ जो अंग्रेजों के पिट्ठू थे। अंग्रेजों के खिलाफ संगठित और गैर संगठित तौर पर कई विद्रोह और आंदोलन चलाया गया।

यूं तो स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी के कई पहलू है। 1857 से भी पहले भी अंग्रेजी शासन के खिलाफ कई विद्रोह हुए, लेकिन मुकम्मल पहचान मिली। 1857 की क्रांति को। कुछ लोग इसे सिपाही विद्रोह भी मानते है, तो कोई इसे पीछे धार्मिक कारणों की तलाश भी करते हैं।

जब बिहार में 1857 की क्रांति की बात होती है तो मंगल पांडे के साथ 'बाबू कुंवर सिंह' का नाम लिया जाता है। उन्हे याद किया जाता है। ये सच है, बिहार में क्रांति की नुमाईदगी कुंवर सिंह ने किया, पर क्रांति की शुरूआत उससे पहले भी हो चुकी थी।

बिहार में सबसे पहले 12 जून 1857 को देवधर जिले के रोहिणी नामक जगह पर अमानत अली, सलामत अली और शेख हारो ने बगावत कर अंग्रेज अफसर को मार डाला था और इस जुर्म के लिए इन्हें 16 जून 1857 को आम के पेड़ पर लटकाकर फांसी दे दी गई और इस तरह बिहार में क्रांति की शुरूआत हुई। 23 जून 1857 को तिरहुत वारिस अली को गिरफ्तार कर लिया गया, जिसके बाद सारे इलाके में क्रांति की लहर फैल गई।

3 जुलाई 1857 को दो सौ से अधिक हथियारबंद क्रान्तिकारी मुल्क को गुलामी की जंजीर से आजाद करवाने के लिये पटना में निकल पड़े, लेकिन अंग्रेजों ने अपने सैनिको की मदद से उन्हें हरा दिया। पीर अली सहित कई क्रांतिकारी पकड़े गये। उधर 6 जुलाई, 1857 को तिरहुत के वारिस अली को

बगावत के जुर्म में फाँसी पर लटका दिया गया। इधर 7 जुलाई, 1857 को पीर अली के साथ घासिटा, खलीफा, गुलाम अब्बास, नंदू लाल उर्फ सिपाही, जुम्मन, मदुवा, काजिल खान, रमजानी, पीर बख्श, वाहिद अली, गुलाम अली, महमूद अकबर और असरार अली को बीच सड़क पर फांसी पर लटका दिया था।

पटना में ही 13 जुलाई, 1857 को पैगम्बर बख्श, घसीटा डोमेन और कल्लू खान समेत तीन लोगों को बगावत के जुर्म में फांसी पर लटका दिया गया। इन्कलाबियों की इतनी बड़ी कुर्बानीयों की खबर सुनकर दानापुर की फौजी टुकड़ी ने 25 जुलाई को बगावत कर दियाऔर वे बाबू कुंवरसिंह की फौज से जाकर मिल गए।

इस बीच बाबू वीर कुंवर सिंह अपने सबसे खास सिपहसालार काको (जहानाबाद) के शहीद काज़ी जुल्फिकार अली खां को कैथी लिपि में खत भेजा हैं। खत मिलते ही जुल्फिकार अली खां अपने कमांडर कुंवर सिंह के कहने पर मैदान ए जंग में कूद पड़े। इन्होंनें नगवां गाँव में राजपूत रेजिमेंट का गठन किया। जहानाबाद जिले के इस रेजिमेंट ने मेरठ, गाजीपुर, बलिया जैसी जगहों पर छापामार युद्ध (गोरिल्ला वार) कर के अंग्रेजो को खूब छकाया और आखिर आजमगढ़ में अंग्रेजी फौज के साथ हुए आमने सामने के जंग में जुल्फिकार अली खां अपने कई बहादुर साथियों के साथ शहीद हुए।

कुंवर सिंह के नेतृत्व में दानापुर के बागी फौज के सबसे पहले आरा पर धावा बोल दिया। इन्कलाबियों ने आरा के अंग्रेजी खजाने पर कब्जा कर लिया। जेलखाने के कैदियों को रिहा कर दिया गयां अंग्रेजी दफ्तरों को ढ़हाकर आरा के छोटे से किले की हिफाजत के लिए आ रहे कैप्टन इनवर और उनके 400 सिपाहियों से भी लोहा लिया और इस संघर्ष में इनवर को मार गिराया। बाकी बचे सिपाही दानापुर वापस भाग गये। इस तरह 27 जुलाई 1857 को दानापुर के सिपाहियों, भोजपुरी जवानों और अन्य साथियों के साथ

मिलकर बाबू कुंवर सिंह ने सिर्फ किला ही नहीं, बल्कि पूरे आरा शहर पर ही कब्जा कर लिया।

बाबू कुंवर सिंह का ऐसा खौफ व्याप्त था कि 25 सितम्बर, 1858 को पटना का कमिश्नर ई. ए. सैमुअल्स कोलकाता में मौजूद अपने बड़े अफसर को खत लिखता है– '' बाबू कुंवर सिंह खुद को मुल्क का बादशाह समझते हैं, वह अपनी तर्ज पर अपना प्रशासन खड़ाकर अपने लोगों को ओहदा देना शुरू कर रहे हैं''। कमिश्नर आगे लिखते हैं–''बाबू कुंवर सिंह के द्वारा आरा में की जा रही सारी हरकत बता रही है कि उन्होने मान लिया है कि उनकी हुकुमत कायम हो चुकी है और वो उसी तर्ज एक ऐसी सरकार वजूद में लाना चाहते हैं जिसे हरा कर इस मुकाम पर पहुंचे है। कुंवर सिंह ने आरा में दो थाना कायम किया ''पूर्वी थाना और पश्चिमी थाना'' जिसकी देख रेख की पूरी जिम्मेदारी, 'शेख गुलाम यह्या' के हाथ में मेजिस्ट्रेट बना कर दे दी गई हैं। मिल्की मोहल्ला आरा के 'शेख मुहम्मद अज़ीमुद्दीन' को पूर्वी थाना का जमादार बना दिया। तुराब अली और खादिम अली जो कि दीवान शेख अफजल के बेटे हैं, को इन थाने में कोतवाल बना दिया हैं।

लेकिन यह कब्जा लम्बे दिनों तक नहीं रह सका। मेजर एक बड़ी फौज लेकर 2 अगस्त को आरा आ धमका और 3 अगस्त, 1857 को आरा पर चढ़ाई कर दिया। जंग में कुंवर सिंह और उसकी छोटी सी फौज हार गयी। आरा के किले पर अंग्रेजों का फिर से कब्जा हो गया। जार्ज ट्रिबिलियन नामक इतिहासकार तो लिखते हैं कि ''यदि बाबू कुंवर सिंह की अवस्था 40 वर्ष और कम होती तो आरा की रक्षा में अंग्रेजों को इससे कहीं अधिक कठिनाई होती।''

8 अगस्त, 1857 को पीर अली खान के साथी औसाफ हुसैन और छेदी ग्वाला को भी बगावत के जुर्म में फांसी पर लटका दिया गया। बाकी लोगों को काला पानी की सजा हो गई।

बाबू कुँवर सिंह आरा और जगदीशपुर में हारने के बाद बिहार से बाहर अंग्रेजों पर हमला करना शुरू कर दिया। सितम्बर 1857 में बाबू कुंवर सिंह की फौज अंग्रेजों और उसके पिट्ठुओं के छक्के छुड़ाते हुए रीवा से आठ मील की दूरी पर पहुंच गई। तब रीवा का राजा जो अंग्रेजों का वफादार था, किले का दरवाजा बन्द करने का हुक्म सुनाया।

वहां के दो कद्दावर शख्स ''हश्मत अली'' और हुरचंद राय'' ने इसका विरोध किया। जिस वजह से राजा ही खुद काकिला छोड़ कर भागना पड़ा। फिर इन लोगों ने बाबू कुंवर सिंह को रास्ता दिखाया और उनकी फौज को किले के अंदर आने दिया। इस तरह बिना खून बहाए ही बाबू कुंवर सिंह ने रीवा को जीत लिया। शेख भिखारी व टिकैत उमराव सिंह की वजह से जंग ए आजादी की आग छोटानागपुर में फैल गई। रांची, चाईबासा, संथाल परगना के जिलों से अंग्रेज भाग खड़े हुए। ये लोग जगदीशपुर के बाबू कुंवर सिंह से लगातार सम्पर्क में थे।

अंग्रेजों ने शेख भिखारी व टिकैत उमराव सिंह को 6 जनवरी, 1858 को घेर कर गिरफ्तार कर लिया और 7 जनवरी 1858 को उसी चुट्टूघाटी पर फौजी अदालत लगाकर मैकडोना ने शेख भिखारी और उनके साथी टिकैत उमराव को फांसी का फैसला सुनाया। 8 जनवरी 1858 को आजादी के दीवाने शेख भिखारी और टिकैत उमराव सिंह को चुट्टूपहाड़ी के बरगद के पेड़ से लटका कर फांसी दे दी गई।

मोहसिनपुर के जमीनदार 'मीर कासिम शेर' अपने उस्ताद गुलाम हुसैन खान के कहने पर बाबू कुंवर सिंह की शहादत के बाद उनके छोटे भाई बाबू अमर सिंह की मदद करने के लिए रोहतास के जंगलों में चले गए। और अंग्रेजों पर कई बड़े हमले किए जिससे बौखलाए हुए अंग्रेजो ने मोहसिनपुर समझ मोसेपुर को पूरी तरह तहस–नहस कर दिया, जो आज भी खुसरूपुर (फतुहा) के पास मौजुद है।

गया के डुकरी वाले मौलवी अली करीम गोरखपुर में अपने क्रांतिकारियों व सहयोगियों का नेतृत्व कर रहे थे। 11 जून से पहले तक वो बाबू अमर सिंह के साथ लगातार अंग्रेजो से जंग कर रहे थे। चूंकि अमर सिंह बिहार लौटना चाहते थे, इस लिए अमर सिंह के साथ मिल कर इन्होनें रूपसागर कैम्प पर हमला भी किया। ठीक उसी समय अली करीम के 400 सिपाही गाजीपुर में अंग्रेजों से लड़ रहे थे।

बाबू कुंवर सिंह की वीरता का बखान ''रामकवि''ने 'कुंवर विलास' और कवि ''तोफराय रे'' ने 'कुंवर पचासा' में विस्तार से किया है। 1857 के गदर में भोजपुरी लोकगीत क्रांति के प्रमुख नायकों को लेकर नहीं रचे गए, बल्कि इसमें अनेक अनाम इतिहास में स्थान पाने से वंचित नायक भी हैं। जिन्होने गदर की चेतना फैलाई। कहीं–कहीं गदर में भाग लेने वाला पूरा का पूरा गांव ही लोकगीतों का नायक है। कुंवर सिंह दल के आगे बढ़ने का वर्णन इस लोकगीत में मुखरित हुआ है–

जब बढ़त कुंवर दल, लक्ष्मणपुर से आगे,
पथ गांव-गांव तरनाई, जागल अनुरागे
जागल बहार बा, गांव बहारेनपुर में,
लच्छूटोला, बारसिंघा, सारंगपुर में

संग लागल सुरेमनपुर, गऊरा अगराईल,
धनभाग पहरपुर के, उमंगा में आईल।
आते करजा जे, दादा के गुरूद्वारा
जहवां समाधि कवि देवराम दुलारा।

(जब अंग्रेजों के विरूद्ध संघर्ष का बिगुल फूंकते बाबू कुंवर सिंह लक्ष्मणपुर से आगे बढ़े तो गांव–गांव की तरूणाई जाग उठी। बहोरनपुर, लच्छुटोला, बरसिंघा, सरेमनपुर, गऊरा, कजरा इत्यादि भोजपुर जनपद के गांव विद्रोह की लहर में बह गए।)

इन लोकगीतों में जन आह्वान की विभिन्न शैलियां अभिव्यक्त हुई हैं। यह अपने स्वरूप में कहीं वीरता, करूणा, कीरिया, आदि के रूप में प्रकट हुआ है। उस समय इसका एक रूप पतिया भी था।

जिसमें गाली की शक्ल में शपथ देकर चिट्ठी एक गांव से दूसरे गांव को भेजा जाता था। पतिया के माध्यम से ललकार दी जाती थी। सामने से श्रोता को संघर्ष के लिए उत्तेजित किया जाता था। इस लोकगीत में इसकी बानगी मिलती है।

गावन-गावन में झुग्गी बाजल बाबू के फिरल दुहाई,
लोहा चबवाई के नेतवा बा, सब साज आपन दल बादल।
बा जान गंवाबाई के नेतबा, चूड़ी फोरवाई के नेतबा,
सिंदूर पोछवाई के नेतबा, बा रांड कहवाई के नेतबा
जेई हो हमार त साथ देई, जेई हो हमार से साथ देई,
बस इहां न मौका समझे के, बा इहां न मौका बुझाई के,
कीतों फेरो नेतबा हमार, की तो तैयार हो जुमाई के।

भोजपुरी क्षेत्र के प्रमुख क्रांतिकारी बाबू रघुवीर नारायण सिंह ने 'बटोहिया' गीत की रचना करके सम्पूर्ण उत्तर भारत में तहलका मचा दिया था, क्योंकि इस गीत में भारत दर्शन के साथ–साथ उसके प्रमुख व्यक्तियों, उनके सिद्धान्तों, देश की नदियों, वनस्पतियों तथा पशु–पक्षियों के बारे में भी अत्यंत जीवंत वर्णन प्रस्तुत किया गया है–

सुंदर सुभूमि भैया भारत के देशवा से मोरे प्रान बसे हिय खोह रे बटोहिया।
एक द्वार घेरे राम हिम कोतवलवा से, तीन द्वार सिंधु घहरावे रे बटोहिया।।

1857 की क्रांति के बाद भोजपुर सहित हिन्दुस्तान की धरती पर हो रहे परिवर्तनों ने जहां एक और नवजागरण की जमीन तैयार की, वहीं विभिन्न सुधार आन्दोलनों, आधुनिक मूल्यों के साथ आजादी की रवानी में रूढ़िवादी

मूल्य टूट रहे थे। हिन्दू समाज के बंधन ढीले पड़ रहे थे और स्त्रियों की दुनियां चूल्हे–चौकों से बाहर नए आकार में विस्तार पा रही थी। भोजपुर की महिलाएं लोकगीतों के माध्यम से अंदर ही अंदर बिगुल फूंक रही थी।–

गदर सत्तावन के, महीना रहे सावन के,
सुराज के लड़ाई में भारत के पहिला गरजन,
बनल रहे आसमान,धरती के दरपन।।

लोकगीतों में 1857 की क्रांति इतनी मुखर क्यों हो सकी क संबंध में ''रामविलास शर्मा'' कहते हैं–

भारतेंदु कालीन लोकसाहित्य में 1857 की चर्चा खुले और ओजस्वी रूप में हुई है, क्योंकि यह अधिकतर मौखिक था और अधिकारियों की पकड़ के बाहर था।''

बाबू कुंवर सिंह की वीरता का सुंदर वर्णन पंडित गोपाल लाल चतुर्वेदी ने अपनी कविता में इस प्रकार किया हैं–

''जोर से जमा जंग, गाढ़े रंग अंग ढंग,
काढ़े है कृपाण खींच मरते कड़ाक दें।
मुगदर और परत पुंज मुसुण्ड केते,
वीर लिए तोड़ते तड़ाक किला साहसी तड़ाक दे।
कहत गोपाल लाल गोरा गर्द माही मिले,
पावते न पाव वीर धावते धड़ाक दे।
क्षत्रिणी में छत्रपति नामी कुंवर सिंह डंका दे,
विजय को हाल आवते भड़ाक दे।''

1857 की असफल क्रांति के बाद अंग्रेजों का अत्याचार काफी बढ़ गया। हालांकि 1857 से सौ वर्ष पहले से किसी न किसी रूप में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध आवाज उठाया जा रहा था। इतिहासकार बिपिन चन्द्र लिखते हैं कि

''1763 से लेकर 1856 तक 40 से ज्यादा बार बड़े स्तर की बगावतों की कोशिशें हुई, छिटपुट किस्सों की गिनती तो 100 से ऊपर की है। गुजरते वक्त के साथ सिपाहियों में विद्रोह के स्वर ऊंचे होते जा रहे थे। ऐसी ही एक बड़ी बगावत 1852 में लॉर्ड एलनबरो के काल में भी हुई थी, जिसे दबा दिया गया। दूसरी बार यह चिंगारी डलहौजी के काल में पंजाब में उठी थी। सैनिकों को सख्त हिदायत थी कि जनता पर कोई रहम न करते हुए उससे कर वसूला जाए और मना करने वालों के खिलाफ निर्मम कार्रवाई की जाय। देशी रियासतों में भी ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ आवाज बुलंद होने लगी थी।

क्रांतिकारी आंदोलन का समय समान्यतः लोगों ने 1857 से 1942 तक माना है। श्रीकृष्ण सरल का मत है कि –''इसका समय सन 1757 से अर्थात पलासी के युद्ध से सन 1961 अर्थात गोवा मुक्ति तक मानना चाहिए।''

9 अगस्त 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन 1920,1921,1930,1940-41 के आंदोलनों से काफी भिन्न था। इसी कारण सुभाष बाबू ने कहा कि 1942 में पेसिव रजिस्टेन्स के युग का अंत होकर एक्टिव रजिस्टेन्स का सूत्रपात हुआ। राजनारायण मिश्र, महेन्द्र चौधरी, लेना प्रसाद, मांतिगिनी, हाजरा, चापेकर बंधुओं, खुदीराम, कन्हाईलाल, करतार सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफकाउल्ला, राजेन्द्र लाहिड़ी, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद जैसे वीरों के अविस्मरणीय योगदान ने आजादी की राह काफी सरल बना दी।

मूलतः गांधीजी के प्रयासों से स्वतंत्रता का स्वप्न एक जन आंदोलन बना था। उन्होंने छोटे शहरों और गांवों में आजादी की लड़ाई के प्रसार पर ध्यान केन्द्रित किया, अन्यथा स्वतंत्रता की बात सिर्फ एक संभ्रात वर्ग के लिए बहस के मुद्दे से अधिक कुछ नहीं था।

गांधी जी यह सब हासिल करने में तब कामयाब रहे, जब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तब न के बराबर था, अधिकाँश भारतीय अनपढ़ थे और ग्रामीण भारत में–जहां ज्यादातर आबादी रहती थी–संचार और परिवहन की मूलभूत

सुविधाएं भी बहुत नहीं थी। आखिर वह यह सब हासिल करने में सफल कैसे रहे? यह उनकी भागीदारी की तकनीक के माध्यम से सम्भव हो सका, उनकी अपील सभी को अपने अभियान के रूप में दिखती थी, न कि गांधी के व्यक्तिगत अभियान की तरह।

अगस्त क्रांति में महिलाओं के योगदान को नकारा नहीं आका जा सकता। अरूणा आसफ अली–सुचेता कृपलानी आदि ने आंदोलन में खूब साथ दिया। अच्युत पटवर्धन रासबिहारी, मोहन सिंह सरीखे क्रांतिकारियों ने अमूल्य योगदान दिया। सारा देश मानों हिल गया। 8 अगस्त 1942 को जिस क्रांति का सूत्रपात हुआ, उसने यह जाहिर कर दिया कि अब अंग्रेजी हुकूमत टिक नहीं सकती। दर असल सन् 1942 की क्रांति पिछले सत्तावन वर्ष से राष्ट्रीय कांग्रेस जो आंदोलन चला रही थी, उसका उफान था। इस उफान ने अंग्रेजो की आंखें खोल दी। इस उफान की पृष्ठभूमि में लोकमान्य तिलक और उनके बाद महात्मा गांधी ने जो व्यापक जन–जागृति उत्पन्न की थी , जो राष्ट्रीय चेतना जगाई थी, वही थी। यह आंदोलन एक ऐसा आंदोलन था, जिसने ब्रिटिश हुकूमत को हिलाकर रख दिया था। सन 1942 में गांधी जी के नेतृत्व में शुरू हुआ, यह आंदोलन बहुत ही सोची–समझी रणनीति का हिस्सा था, इसमें पूरा देश शामिल हुआ। इस आंदोलन का तत्कालीन ब्रिटिश सरकार पर बहुत ज्यादा असर हुआ। इसे खत्म करने के लिए पूरी ब्रिटिश सरकार को एक साल से ज्यादा का समय लग गया।

बिहार के चम्पारण जिले में महात्मा गांधी की अगुवाई में 1917 का चम्पारण आंदोलन भारत का पहला नागरिक अवज्ञा आंदोलन था। इस आंदोलन के जरिए महात्मा गांधी ने लोगों के विरोध को सत्याग्रह के माध्यम से लागू करने का पहला प्रयास किया, जो ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ आम जनता के अहिंसक प्रतिरोध पर आधारित था। क्योंकि गांधी जी जानते थे कि सिर्फ हथियार के बल पर अंग्रेजों के शासन से मुक्ति नहीं मिल सकती। उन्होंने जन

भागीदारी को अपना हथियार बनाया, जिसके आगे अंग्रेजों को झुकना पड़ा। हालांकि ऐसा नही है बाकी शस्त्रधारी क्रांतिकारियों का अंग्रेजों पर कोई असर नहीं पड़ा, लेकिन जन भागीदारी ने आजादी की मुहिम को एक नई दिशा दे दी।

जनभागीदारी के बिना अंग्रेजो के शासन से मुक्ति पाना आसान नहीं था, लेकिन महात्मा गांधी अपने आचार–व्यवहार से लोगों में लोकप्रिय हो गए। उनका तपोनिष्ठ, त्यागी, वैरागी, भाई–भतीजावाद से दूर, निष्कलंक चरित्र ही इस करिश्मा का कारण बना। खादी गान के गीत से उनकी लोकप्रियता का पता चलता है–

खद्दर की धोती पहिरे, खद्दर के कुरता पहिरे,
आवे के वेरि गांधी बाबा अवरू राजेंदर बाबू सीटिया बजवल,
उठी गेले सब सुराजी, सुराजी झंडा हाथ में।।

इसलिए हम कह सकते है कि भोजपुरी जनमानस ने गांधी दर्शन को स्वतंत्रता आंदोलन के परिपेक्ष्य में पूरी तरह से आत्मसात कर लिया था। डॉ राजेश्वरी शांडिल्य ने ठीक ही कहा है ''भोजपुरी क्षेत्र के लोकजीवन में गांधी दर्शन कोई अप्रासंगिक अथवा किताबी नहीं रह गया था, बल्कि घर–घर, जन–जन, स्त्री–पुरूष, बाल–वृद्ध, साधु–सन्यासी, राग–वैरागी सभी इस रंग में रंग चुके थे।'' इसलिए इस बात में कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि 1857 से 1942 तक के स्वतंत्रता आंदोलनों में भोजपुरी भाषा–भाषी, भोजपुरी साहित्य, साहित्य, लोकगीत ऐसे जनचेतना के प्रमाणों से भरे पड़े हैं।

Hkkt ijh {k=k e Lor=rk lxke d nkjku tu Hkkxhnkjh ,o tu pruk dh fLFkfr

विजय कुमार

1947 को 72 साल बीत गये उन दिनों की बात करते हुये हम थोड़े भावुक हो जाते है। यह सहज भी है। औपनिवशिक संसार में सर्वाधिक अमानवीय षड़यंत्र रहा है। भारत में तो इस ने लाखों जानें ली और बड़े पैमाने पर लूट–पाट को अंजाम दिया।

भूख, हत्या, लूट और विरोध के जिस दौर से हम गुजरे है, उसे भुलाया नहीं जा सकता।

पर आप सोचिये यह सब क्यों हुआ और कैसे संभव हुआ तो आपको उत्तर मिलेगा संपूर्ण विश्व को विशेष रूप से यूरोपीय शक्तियों की उपनिवेश बनाने की प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप जीते गये क्षेत्रों को थोपे गये जुल्म से गुजरना पड़ा।

वैसे मुझे जिस बात को आपके समक्ष रखनी है वह है, भोजपुरी भाषा–भाषी जन गण ने कैसे अंग्रेज को औपनिवेशिक अमानवीय शासन का विरोध किया और अन्तोगत्वा उन्हें जाना पड़ा।

हमें ज्ञात है कि भारत विजय का इतिहास मुहम्मद साहब के निधन के पश्चात् जब उनके उत्तराधिकारी खलीफा अरब का विस्तार करते हुए इरान के बाद पहले अफगानिस्तान और फिर मकराना पर कब्जा जमाया (7वीं शताब्दी में)।

हालांकि अरबों से हमारा व्यापारिक संबंध पुराने समय से था और वे 8वीं शताब्दी में व्यापारी की तरह आकर मालाबार केरला में आकर बसे थे।

फिर नये आफगान मुस्लिमों ने उत्तर भारत पर आक्रमण शुरू किया। यह बात याद रखनी चाहिये राजतंत्र के दौर में युद्ध करना और विजित प्रदेश को अपने में मिला लेना कोई अनहोनी घटना नहीं थी। बल्कि राजा का मुख्य उद्देश्य राज्य का संरक्षण दूसरे राजाओं से और विस्तार ही था।

जो व्यक्ति सेना खड़ा करने में सक्षम हो जाय उसे राजा बनते देर न लगती थी। यह उल्लेखनीय है मुस्लिम शासक हो या अंग्रेज उन्हें अपने शासन बनाये रखने के लिए युद्ध तो लड़ते ही रहना पड़ता था। राजतंत्र और प्रजातंत्र के अन्तर को समझकर ही आप समझा सकते हैं कि जनगण क्या भूमिका निभा सकती है।

सेना किसान का बेटा होता था। अधिकांश जगहों पर उन्हें या तो सीधे जमीन दी जाती थी या अप्रत्यक्ष रूप से।

मुगलों ने जब 1526 में भारत में मुगल शासन की नींव रखी जो 1857 तक चलता रहा जब अंग्रेजों ने उन्हें पराजित कर दिया।

मेरी बात को इस प्रकार देखे बंगाल में नये नवाब सिराजुद्दौला का जब रॉबर क्लाइन के नेतृत्व में अंग्रेजी साथ जब प्लासी का युद्ध हुआ और बंगाल जीता गया। उस समय अंग्रेजों के पास 750 अंग्रेज 21,000 भारतीय सैनिक थे जिनमें से 22 अंग्रेज और 50 भारतीय सैनिक मारे गये। जबकि मुगल के पास 50 हजार सैनिक थे। जिनमें से 500 मारे गये।

नवाब सिराजुद्दौला ने जब अंग्रेजों को अपने क्षेत्र के प्रसार को रोकने का आदेश दिया और आदेश न मानने पर बल प्रयोग किया जिसका विरोध अंग्रेजों ने किया और बंगाल को जीतकर अंग्रेजी शासन की नींव डाली।

मुगल शासन हो या ब्रिटिश दोनों को ही भारतीय शासकों का विरोध झेलना पड़ा मुगल शासकों का अधिकांश समय सैन्य शिविरों में ही बीता था। सर्वाधिक नामी राजा अकबर को भी अपनी जिन्दगी युद्ध क्षेत्र में बितानी पड़ी। हालांकि

उत्तरवर्ती मुगलों ने अपने को भारत के साथ जोड़ने का प्रयास कियां पर वे जिस 500 साल पुरानी अरबी संस्कृति और धर्म को भारत पर थोपना चाहते थे। वह एक 5000 साल पुरानी सभ्यता और संस्कृति से मेल नही बैठती थी।

ब्रिटिश उपनिवेश की कथा तो और भी निराली है, वे इतने बड़े देश में कम संख्या में व्यापार करने आये लेकिन अपनी तिकड़मी बुद्धि साथ लेकर आये जिसका उन्होंने भरपूर उपयोग किया। बहुत लम्बे समय तक भारत में उनका कार्य व्यापार चलता रहा ।

इसके लिये उन्होंने तीन मुख्य तरीके अपनाये पहले मुस्लिम और हिन्दुओं की दूरी बढ़ाई। और मुस्लिम शासकों की हठधर्मिता के विरूद्ध हिन्दुओं को पुर्नस्थापित करने का प्रयास किया।

दूसरा भारत के प्रत्यक्ष रूप से शासित क्षेत्रों और राजे–रजवाड़े द्वारा शासित क्षेत्र में बाँटा।

तीसरा भारत में जमीनदारी प्रथा लागू किया।

आगे बढ़ने से पहले यह समझ लें आदमी पर जिस राजनीतिक व्यवस्था और स्थिति का वर्चस्व होता है। आदमी के कई आयाम उससे इतर भी होते हैं वहीं हमें क्रूरतम सत्ता के विरोध में खड़ा होने की प्रेरणा देते हैं।

उसमें सबसे महत्वपूर्ण चीज है भाषा और संस्कृति का क्षेत्र।

आक्रमणकारी जहाँ इस बात के लिये सजग होता है और अपने क्षेत्र में वह भाषा और संस्कृति के क्षेत्र में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करे।

मैं आपको स्मरण कराना चाहती हूँ कि इस्लामी शासकों ने भारत में पुरानी शिक्षा के बड़े–बड़े केन्द्र को ध्वस्त कर दिया।

भारत में शिक्षा मदरसों में दिया जाने लगा। साथ ही राजकीय काम–काज

की भाषा के रूप में फारसी को थोप दिया गया। जनता के पास बहुत थोड़े से विकल्प थे।

1813 में के कम्पनी के चार्टर के नवीनीकरण के समय आदेश दिया कि शिक्षा पर 100000/साल खर्च किया जाय। भारत का गर्वनर जनरल बेन्टिक बना, तब वह अंग्रेजी को भारत की भाषा बनाने की योजना में लगा। 1835 में मैकले तो अपने उद्देश्य को छुपाया भी नहीं उसने कहा अंग्रेजी हिन्दुस्तान में इसलिये पढ़ाई जाय कि उन्हें छोटी नौकरी दी जा सके और भारत में सांस्कृतिक बदलाव लाया जा सके।

रंग और रक्त से भारतीय हो लेकिन पसंद विचार बुद्धि और नैतिकता में अंग्रेज हो।

अंग्रेजो ने जब आधुनिक स्कूल खोला तब उसमें पढ़ाने का माध्यम अंग्रेजी हो रखा। 19वीं शताब्दी में यह अंग्रेजी हम पर थोपी गई।

आपको ध्यान होगा मैंने ऊपर बताया कि मुगलों ने फारसी को अपने शासन / राजकाज की भाषा बनाई तो अंग्रेजों ने अंग्रेजी का और अंग्रेजी तौर–तरीके को भारत पर थोपने का करीब–करीब सफल प्रयास किया।

पर जन–गण के पास भी जो सबसे कारगर हथियार होता है विरोध का वह उसकी भाषा और संस्कृति। भोजपुरी इलाके में अपनी भाषा, अपनी वीरता, अपने सम्मान की रक्षा में निश्चय ही भोजपुरी भाषा ने योगदान दिया।

गांधी जी ने ठीक ही कहा था कि अंग्रेजी बहुसंख्यक जनता पर थोपना अपराध है। यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य होगा।

भोजपुरी सात हिन्दी भाषाई क्षेत्र में उपजी भाषा में से एक है (हरयानवी, ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बुन्देली, बघेली और कनौजी)

इस बोली का लिखित साहित्य नहीं था लौकिक मौखिक साहित्य ने उनकी

जिजिविषा को जिन्दा रखा। ग्रियर्सन ने लिखा है भोजपुरी लोगों की वीरता ब्रिटिश भारतीय सेना में उल्लेखनीय है और अनुबंधित मजदूर के रूप में कर्मठता में अफ्रीका मजदूर को स्थानपन्न करने के योग्य माने गये।

आखिर में जब 1857 का सिपाही विद्रोह हो गया और 1917 का चम्पारण सत्याग्रह में आम लोगों ने जिस तरह अंग्रेजों के विरूद्ध कमर कस लिया वह उल्लेखनीय है।

हम बिहार वासी चाहे बाबू कुंवर सिंह हो या डॉ० राजेन्द्र प्रसाद और कई अन्य नाम हैं जो उल्लेखनीय हैं जिनके योगदान से भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन अपने गन्तव्य भारतीय आजादी को प्राप्त किया।

यह सर्व विदित है कि जगदीशपुर के बाबू वीर कुंवर सिंह अन्य महाराजाओं और जमींदार से अलग अपने क्रांतिकारी अंग्रेज विरोध के लिए उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने ४००० सैनिकों की मदद से अनेक संघर्षों में विजय प्राप्त की और अंत में नाना साहब को आजमगढ़ में ब्रिटिश सरकर के खिलाफ विजय दिलाई।

1917 के चंपारण सत्याग्रह 1917 की शुरूआत के लिये भोजपुरी भाषी, चम्पारण के राजकुमार शुक्ला तथा राम लाल द्वारा गांधी जी को आमंत्रित कर लोगों को जगाने और संघर्ष का विगुल फूंकने में सफल हुए।

हम बिहार के लोग भोजपुरी भाषा–भाषी, गाजीपुर के सहजानंद सरस्वती को कैसे भूल सकते हैं, जिन्होनें संन्यासी होते हुये भी किसानों का एक आन्दोलन खड़ा किया जिसके ऐतिहासिक महत्व को अनदेखा नही किया जा सकता है।

ऐसा आकस्मिक नहीं है कि भारत के प्रथम राष्ट्रपति सिवान से आते हैं, जा भोजपुरी भाषा–भाषी क्षेत्र है। हालांकि उनके पिता संस्कृत और फारसी दोनों के विद्वान थे।

भोजपुर मंडल शाहाबाद, बलिया, गाजीपुर जिलों की भूमि वीरता के लिये उसी प्रकार विख्यात है।

स्वतंत्रता के नाम पर मर मिटने वाले अपने सपूतों की वीर गाथाओं से उसी प्रकार पवित्र है।

जिस प्रकार भारत का मान ऊंचा करने वाले वीर पुरूषों की धरती राजस्थान।

कृष्ण देव उपाध्याय के इन पंक्तियों से अपनी बात समाप्त करूंगा।

यह बोली उन लोगों की बोली है जिनकी नस–नस में वीर रस का संचार होता है। विदेशों में भी अपने प्रबल प्रताप की पताका फहराते है।

जो कूप मंडूकत्व का बहिष्कार कर स्वतंत्रता की पवित्र वायु का सेवन करने वाले है।

Lor=rk lxke e tuHkkxhnkjh % lnHk Hkkt ijh {k=

आशीष कुमार मिश्र

सबसे पहले नमन भारत माँ के उन वीर सपूतों को जिन्होंने हमें आजाद भारत दिया। जिन्होंने गुलामों की जंजीरों में जकड़ी भारत माता को उन गोरों के शासन से अपने प्राणों की आहूति देकर उन्मुक्त कराया, कहते थे जिनके राज में सूरज डूबता ही नहीं था। आज जो हम खुली हवा में सांस ले रहे हैं, अपने मन का कर रहे है, सिरज रहे, रच रहे, यहां इकट्ठा होकर अपने मन की बातें कर रहे, ये पूरा का पूरा जिस पीढ़ी ओर हमारे जिन नायकों ने हमें दिया है, पुनश्च उनको नमन बारंबार प्रणाम। अभिनंदन मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद के भोजपुरी साहित्य अकादमी को जिसने हमें मिलने–जुलने और भोजपुरी क्षेत्र में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जनभागीदारी पर विमर्श का गौरवमयी अवसर दिया।

मैं बिहार से आता हूं। यहां की प्रमुख बोलियां हैं–मैथिली, भोजपुरी, मगही, अंगिका, बज्जिका संयुक्त बिहार में भारत की आदिबोलियां भी बोली जाती थी, संथाली, नागपुरिया, सोरठा आदि। मैथिली और भोजपुरी, ये दो ऐसी बोलियां हैं जिनका व्यापक परिधि में इस्तेमाल होता है। मैथिली भाषा–भाषी देशभर में छाये हैं पर भोजपुरी भाषा ने वृहत्तर विस्तार पाया है। अब तो यह बहुराज्यीय और बहुदेशीय भाषा बन गयी है। मैथिली क्षेत्र जहां मिठास के लिए तो भोजपुरी भाषा–भाषी क्षेत्र अपने शौर्य के लिए जाना जाता है। यूं तो बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश देश के ऐसे हिन्दी भाषी क्षेत्र हैं, जहां से भारतवर्ष में उठी हर अंगड़ाई और लड़ाई ने अपनी ताकत पायी है लेकिन इनमें भोजपुरी भाषा–भाषी क्षेत्र का योगदान अहम है।

भोजपुरी वीरों की भाषा मानी जाती है जिसका आदर्श वाक्य है–'सब हथियार छाड़ि के हाथ मे रखिह लाठी'। भारत की सबसे लम्बी सड़क बनाने वाले सम्राट शेरशाह, आजाद भारत के पहले राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सन् 74 की क्रांति के नायक जयप्रकाश नारायण, भोजपुरी के शेक्सपीयर भिखारी ठाकुर, जनता के गीतकार महेन्द्र मिसिर, नाटककार रामेश्वर सिंह कश्यप उर्फ लोहा सिंह भोजपुरी इलाके के कुछ नामचीन नायक हैं। हम भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भोजपुरी क्षेत्र के अवदानों की बात करें तो आजादी की हर लड़ाई को इस इलाके में व्यापक जनसमर्थन मिला, लेकिन यहां ऐसे कई मुख्य दास्तान हैं जिन्होंने पूरे देश के जनमानस को स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए न सिर्फ उद्वेलित किया बल्कि लोगों को देश के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को प्रेरित भी किया। यहां स्वतंत्रता संग्राम के तीन प्रमुख चरणों का जिक्र करना चाहेंगे जिसने हमें अपना झंडा लहराने का अवसर प्रदान किया। बाबू कुंवर सिंह के शौर्य को सामने लाने वाला 1857 का संघर्ष, महात्मा गांधी के नेतृत्व में 1917 का चंपारण सत्याग्रह और 1942 की अगस्त क्रांति जिसमें बिहार के 7 नौजवानों ने पटना सचिवालय पर तिरंगा लहराने के क्रम में अंग्रजों की गोलियों को हंसते–हंसते अपने सीने से लगाया। इनके साथ ही हम अगर स्वामी सहजानंद के किसान आंदोलन का जिक्र न करें तो बात बेमानी होगी। असल में किसान आंदोलन के माध्यम से ही स्वतंत्रता संग्राम में व्यापक जनभागीदारी की शुरूआत हुई और देखते ही देखते देश के कई हिस्सों में किसान गोरी हुकूमत के खिलाफ गोलबंद होने लगे। स्वामी सहजानंद ने व्यापक जनसमूह में आजादी का सपना भरा, हालांकि इतिहासकारों ने उनके योगदानों से बहुत न्याय किया हो ऐसा कहीं दिखता नहीं और हमें इस भूल का सुधार करना चाहिए।

बाबू कुंवर सिंह का शौर्य

भारतीय स्वतंत्रता के प्रथम संग्राम के नायकों में बाबू वीर कुंवर सिंह का नाम विशेष स्थान पर है। वह ऐसा दौर था जब गुलामी की दासता घनी हो रही

थी। अंग्रजों का दमन रोजाना बढ़ता जा रहा था। उनकी एक ही मंशा थी भारत को तबाह करना और इसके ज्यादा से ज्यादा क्षेत्रों पर यूनियन जैक का झंडा लहराना ताकि उनकी व्यापारिक स्वच्छंदता बढ़े और सोने की चिड़ियां कहे जाने वाले भारत देश के हर हिस्से को वे मनमर्जी लूट सकें। इन्हीं हाल में 1857 का विद्रोह हुआ। मंगल पांडे, रानी लक्ष्मीबाई और तात्याटोपे ने मेरठ, झांसी और कानपुर में मोर्चा खोला। बहादुर शाह जफर ने दिल्ली में अंग्रेजी हुकूमत मानने से इनकार करते हुए आजादी का उद्घोष कर दिया। बिहार में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में सिपाहियों का विद्रोह उभरा जिसका नेतृत्व 80 साल के बाबू कुंवर सिंह कर रहे थे। बाबू कुंवर सिंह भोजपुर जिले के थे। बाबू कुंवर सिंह का जन्म 1777 में हुआ था। इस तरह 80 वर्ष की उम्र में उन्होंने उस साम्राज्य के नुमाइंदो से लोहा लिया जिसका सूरज कभी अस्त नहीं होता था।

बाबू कुवंर सिंह के पिताजी साहबजादा सिंह, मालवा के राजा भोज के वंशजो में से एक थे और उनके पास एक बढ़ी जमींदारी थी। अंग्रेजों की हड़प नीति के चलते वह जमींदारी आती रही। पूरे परिवार में अंग्रेजो के लिए वैमनस्य का भाव आ गयां बाबू कुंवर सिंह के अलावा उनके अनुज अमर सिंह ने भी प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लिया। दोनों ने अंग्रेजों की बड़ी शक्ति के खिलाफ छापामार दस्ता बनाया। कुंवर सिंह बाधाओं से कभी विचलित नहीं हुए, न कभी रूके और न कभी थके। 3-4 हजार लोगों से निष्ठावान विद्रोहियों का एक दल बनाया जो शीघ्र ही 10 हजार तक पहुंच गया। उन्हें उत्साह तथा अटल संकल्प की भावना से भरा। जगदीशपुर के अपने दुर्ग में बंदूक एवं गोला बारूद बनाने का कारखाना स्थापित किया एवं इतना खाद्य सामग्री एकत्रित किया जो 20 हजार सैनिकों को छह माह तक खिलाने के लिए पर्याप्त थे।

25 जुलाई 1857 को उन्होंने दानापुर के सिपाहियों के साथ मिलकर आरा शहर पर कब्जा किया था और उसके बाद रामगढ़ के सिपाहियों के साथ बांदा,

रीवा, आजमगढ़, बनारस, बलिया, गाजीपुर और गोरखपुर जैसे कई ब्रिटिश ठिकानों पर अधिकार किया उनके पास संसाधन अपेक्षाकृत कम थे। लेकिन उनकी रणनीति जोरदार थी। उनके सिपाहियों की छोटी टुकड़ी अंग्रेजो को छकाती रही। आजमगढ़ के पास अतरौलिया में हुई लड़ाई में बाबू कुंवर सिंह ने पीछे हट कर तेज प्रहार की गुरिल्ला नीति को अपनाया। अंग्रेजों को झांसा देने के लिए पहले वह पीछे हटते चले गए ताकि उनकी इस रणनीति से अंग्रेज विजय के उल्लास में डूब गए। अंग्रेजों की इस लापरवाही का फायदा उठाते हुए बाबू कुंवर सिंह की सेना ने उन पर करारा प्रहार किया जिससे अंग्रेजी सेना के पांव उखड़ गए।

अपनी करारी पराजय से बौखलाए अंग्रेजों ने फैसला किया कि इस बार बाबू कुंवर सिंह की सेना का पूर्ण विनाश किए बिना वापस नहीं लौटेंगे। बाबू कुंवर सिंह ने झट से अपनी रणनीति बदल ली और अपनी सेना को कई टुकड़ों में बांट दिया। इससे ब्रिटिश सेना दिग्भ्रमित हो गई। उन्हें जंगलो के बारे में ज्यादा मालूम नहीं था, जबकि बाबू कुंवर सिंह के सिपाही जंगल के चप्पे–चप्पे से अवगत थे। फिर ब्रिटिश सेना को हार का सामना करना पड़ा।

इसी बीच झांसी, दिल्ली, कानपुर और लखनऊ में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कमजोर पड़ गयां इन जगहों से मिलने वाली सहायता भी बंद हो गई। इससे बाबू कुंवर सिंह के हाथ भी कमजोर पड़ते गए। फिर एक रात बलिया के पास शिवपुरी तट से जब वह गंगा पार कर रहे थे तो अंग्रेजी सेना ने पीछे से हमला बोला। अंग्रेजों की एक गोली बाबू कुंवर सिंह के हाथ को भेदती हुई निकल गई। घाव काफी गहरा था। गोली का जहर पूरे शरीर में फैलने का खतरा था। बाबू कुंवर सिंह ने हंसते–हंसते अपना हाथ काट कर गंगा मैया को अर्पित कर दिया, पर अंग्रेजी सेना के हाथ नहीं लगे। इसी अवस्था में वह जगदीशपुर पहुंचे। 23 अप्रैल,1858 को उनका राज्यभिषेक किया गया। ब्रिटेन का ध्वज यूनियन जैक उतार दिया गया। जगदीशपुर में स्वतंत्र भारत का झंडा लहराने लगा। हालांकि कुछ ही समय ही बाद 81 वर्षीय बाबू कुंवर सिंह वीरगति को

प्राप्त हुए और प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की धमक भी साथ में फीकी होती गयी।

1857 से 1859 का भोजपुर, जगदीशपुर और शाहाबाद का यह आंदोलन सही अर्थों में ब्रिटिश राजसत्ता को दी गयी एक बड़ी चुनौती थी। बंगाल सरकार के सचिव को पटना प्रमंडल के कमिश्नर ई.ए.सेमुल्स में तब इसके बारे में पत्र लिखते हुए कहा था– यह केवल सिपाही विद्राह नहीं। शाहाबाद का आंदोलन व्यापक भारतीय विद्रोह बन चुका है। लार्ड क्रोमर ने अपनी रिपोर्ट में कहा था– मैं चाहूंगा कि अंग्रेजों की तरूण पीढ़िया भारतीय विप्लव के इतिहास को पढ़े, इसमें हमारे लिए अनेक अंदेश एवं चेतावनी छिपे हैं'।

बाबू कुंवर सिंह और उनकी गाथा आज भी भोजपुरी अंचल में शान से अपनी खांटी भोजपुरी में गायी जाती है तो लोगों का सीना गर्व से चौड़ा हो जाता है–– बाबू कुंवर सिंह, तेगवा बहादुर–– हो–हो बाबू–––।'

चंपारण सत्याग्रह

उत्तर बिहार के तिरहुत प्रमंडल का चम्पारण, सत्याग्रह की पहली जमीन के रूप में भारतवर्ष में स्थापित हुआ। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में इस धरती का अद्वितीय महत्व है। सत्याग्रह को आजादी की मंजिल पाने की शुरूआत माना जाता है। अफ्रीका से लौटने के बाद गांधी जी ने भारत के नवोदित राष्ट्रवाद का पहला प्रयोग यहीं किया था जो जनभागीदारी से व्यापक रूप से सफल रहा।

चंपारण सत्याग्रह ने नीलहा साहेबों के अत्याचारों से दबे, खुद को असहाय मानने वाले किसानों के अंदर आत्मविश्वास ही नहीं पैदा किया बल्कि अत्याचारों के खिलाफ उठ खड़ा होने की हिम्मत भी उनमें भरी। इसने पूरे हिन्दुस्तान के शोषितों के लिए प्रेरणादायी मंत्र का काम किया। साथ ही महात्मा गांधी को अपने सत्य आधारित अहिंसक हथियार के प्रयोग के जिए कर्मभूमि भी चंपारण में प्राप्त हुई। यहां की उपलब्धियों ने उन्हें भारत के राजनीतिक क्षितिज पर उभरने में बड़ी भूमिका निभाई।

गांधी ने खुद अपनी आत्मकथा में लिखा है–यह शब्दशः सत्य है कि किसानों से इस भेंट में भगवान, अहिंसा और सत्य का साक्षात्मकार कर रहा था। यह भी स्वीकारा कि चंपारण ने उन्हें हिन्दुस्तान से परिचित कराया। इतिहास गवाह है चंपारण ने ही मोहनदास को महात्मा का दर्जा दिलाया।

खैर, अंग्रेजों के दमन से व्यथित किसानों को इस दासता से मुक्त कराने 10 अप्रैल 1917 को गांधीजी ने बिहार की धरती पर अपना पहला कदम रखा। राजकुमार शुक्ल गांधीजी को ट्रेन से लेकर पटना पहुंचे थे। शुक्त उन्हें लेकर सीधे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के घर गए, राजेन्द्र प्रसाद तब पटना के बड़े वकीलों में एक थे। राजेन्द्र प्रसाद कहीं बाहर थे तो गांधी जी मुजफ्फरपुर चले गये। गांधीजी की मुलाकात मुजफ्फरपुर में भगवानदास कृपलानी से हुई, जो वहां एक कॉलेज में प्राध्यापक थे। हालांकि गांधीजी को कॉलेज कैंपस में ठहरने के चलते कृपलानी की नौकरी भी चली गई। गांधी ने मुजफ्फरपुर में ही अंग्रेज कमिश्नर मोर शेड से भी मुलाकात की। गांधी के प्रति उसने रूखा व्यवहार रखा। मोरशेड ने चंपारण के डीएम को पत्र लिखकर कहा कि गांधी अगर चंपारण जाएं तो धारा 144 लगाकर उन्हें रोका जाए, वापस भेज दिया जाए।

15 अप्रैल को गांधीजी ने चम्पारण में कदम रखा, रास्ते में हर स्टेशन पर लोगों ने उनका विशाल स्वागत किया। जंगल में आग की तरह यह खबर फैल गयी कि नील की खेती के खिलाफ किसानों का सहायेाग करने गांधी पहुंचे हैं। मोतिहारी पहुंचकर गांधी वकील गोरख प्रसाद के घर गये।

16 अप्रैल की सुबह ही गांधी हाथी पर सवार होकर जसौलपट्टी के रास्ते गांव वालों, किसानों से मिलने निकल पड़े। उनकी पीड़ा सुनने। इसी बीच दारोगा ने पहुंचकर उन्हें डीएम का आदेश बताया कि वे तुरंत वापस लौट जाएं, पर गांधी ने वापस जाने से इनकार कर दिया। 17 अप्रैल को इलाके के सारे किसान गांधी से मिलने पहुंच गए। गांधी ने किसानों के बयान दर्ज किय। अगले दिन उन्हें सब डिविजनल मजिस्ट्रेट की अदालत में पेश होने का आदेश

आया। 18 अप्रैल को सुबह से ही अदालत में भीड़ जुटने लगी। खबर फैल चुकी थी कि गांधीजी को देशद्रोह के इल्जाम में जेल भेजा जा सकता है, भीड़ बेकाबू हो गई। गांधीजी ने अपना मुकदमा खुद लड़ा। हालात ये हो गई कि मजिस्ट्रेट ने खुद मुचलका भरकर गांधीजी को रिहा कर दिया। मोतिहारी एसडीओ कोर्ट में 18 अप्रैल को गांधी ने जो लिखित वक्तव्य दिया वह अपने आप में ऐतिहासिक दस्तावेज है। यह बाद के दिनों में स्वतंत्रता सेनानियों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बना।

19 अप्रैल को यह खबर पूरे देश में जब फैल गयी तो अंग्रेज सरकार ने गांधी पर धाराएं लगाने के लिए अपने ही अफसरों को लताड़ लगायी। 20 अप्रैल को गांधी पर से सारे मुकदमें हटा लिये गये। इस तरह पहली लड़ाई जीती गयी। अपार जनसर्मथन के बाद गोरी सरकार झुक गयी। आखिर उसने नील प्लांटरों के विरूद्ध और किसानों के हक में फैसला सुनाया। चार मार्च 1918 को कानून बना तथा नील की खेती से चंपारण के तत्काल 19 लाख किसानों को मुक्ति मिल गयी।

गांधी ने नीलहों की बर्बरता से किसानों की मुक्ति के बाद इस इलाके की बड़ी समस्याओं की ओर लोगों को सचेत किया शिक्षा, साफ–सफाई और स्वास्थ्य की प्राथमिकताएं बताई तथा उन पर काम किया। भितिहरवा समेत कई जगहों पर गांधी ने बुनियादी विद्यालय की स्थापना की।

बड़ा कारावाह था गांधी जी के साथ राजकुमार शुक्ल, मौलाना मजहरूल हक, ब्रजकिशोर प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, रामनवमी प्रसाद, गया प्रसाद, धरणीधर प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह, गोरख प्रसाद, हरिवंश सहाय, सच्चिदानंद सिन्हा, हसन इमाम, पीर मुहम्मद यूनिस समेत करीब चार दर्जन से अधिक प्रमुख सहयोगी इस ल़ड़ाई में गांधी के साथ थे। बिहार के बाहर से पत्नी कस्तूरबा गांधी के अलावा जेबी कृपलानी, मदन मोहन मालवीय, महादेव देसाई, छोटे लाल, आदि प्रमुख थे।

अगस्त क्रांति / सचिवालय गोलीकांड

भारतीय स्वाधनीता संघर्ष में सन् 1942 की अगस्त क्रांति का विशेष योगदान है। इसे आजादी की अंतिम लड़ाई कहा जाता है जिसके बिना पर हम 15 अगस्त को भारतीय ध्वज फहरा सके। अगस्त क्रांति के हर चरण को बिहार तथा भोजपुरी क्षेत्र के लोगों ने उत्कर्ष तक पहुंचाने में अपनी भूमिका निभायी। खासतौर से 11 अगस्त को सचिवालय गोलीकांड ओर इसमें सात छात्रों की शहादत स्वर्णाक्षरों में दर्ज है।

7 अगस्त 1942 को मुम्बई में कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में भारत छोड़ो प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया और गाँधी ने करो या मरो का नारा दिया। 8 अगस्त को भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित होने के तुरन्त बाद कांग्रेस के अधिकतर नेता गिरफ्तार कर लिये गये। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद भी गिरफ्तार हो गये। बाद में मथुरा बाबू, श्रीकृष्ण सिंह, अनुग्रह बाबू इत्यादि भी गिरफ्तार कर लिये गये। बलदेव सहाय ने सरकारी नीति के विरोध में महाधिवक्ता पद से इस्तीफा दे दिया। 9 अगस्त को अध्यादेश द्वारा कांग्रेस को गैर–कानूनी घोषित कर दिया। राजेन्द्र बाबू की गिरफ्तारी की खबर पहुंचते ही पटना के छात्रों ने एक वृहत जुलूस निकाला। मुजफ्फरपुर में पूरी हड़ताल रही। बिहार शरीफ, गया, सीवा, जगदीशपुर, लालगंज, धनवाद, बेगूसराय, भागलपुर समेत सभी शहरों में लोग सड़कों पर उतरे और झंडा फहराने लगे।

11 अगस्त 1942 को स्थिति अचानक गंभीर हो गयी। छात्रों के साथ ही आम नागरिक कृत संकल्पित होकर पटना सचिवालय पर झंडा फहराने के लिए निकल पड़े। दोपहर सवा दो बजे सचिवालय के पूर्वी फाटक पर भारतीय ध्वज फहरा दिया गया और सचिवालय भवन पर झंडा फहराने के लिए लोग कोशिश करते रहे। अंततः 4 बजकर 57 मिनट पर पटना के जिलाधिकारी डब्ल्यू.जी. आर्थर के आदेश पर पुलिस ने गोली चलाने का आदेश दे दिया। तेरह–चौदह राउंड गोलियां चली, इस गोलीकाण्ड में सात छात्र शहीद हुए, लगभग 25

गम्भीर रूप से घायल हुए। 11 अगस्त 1942 के सचिवालय गोलीकाण्ड ने बिहार में आन्दोलन को उग्र कर दियां 12 अगस्त को प्रायः सभी शहर व तमाम सड़कों पर शोक जुलूस निकल। अंग्रेजों के खिलाफ भारी गुस्सा घर कर गया था। सरकारी इमारतों की रक्षा न कर पाने की आशंका में गोरी सरकार ने कर्फ्यू लगा दिया था।

जो सात छात्र सचिवालय गोलीकांड में शहीद हुए, उनमें सारण जिले के निवासी राजकुमार सिंह के पुत्र, राम मोहन राय सेमिनरी के 12वीं कक्षा के छात्र उमाकान्त प्रसाद सिंह, इसी स्कूल के 11वीं के छात्र रामानन्द सिंह, भागलपुर निवासी जगदीश झा के पुत्र तथा पटना कालेजियएट में ग्यारहवीं के छात्र सतीश प्रसाद झा, गया जिले के खरांठी निवासी बीएन कालेज के छात्र जगपति कुमार, मीलर हाईस्कूल में 9वीं के छात्र देवीपद चौधरी (जमालपुरवासी), सारण जिला निवासी तथा पटना हाईस्कूल के 11वीं के विद्यार्थी राजेन्द्र सिंह और पटना जिले के दशरथ गांव निवारी पुनपुन हाईस्कूल के 11वीं के छात्र राम गोविंद सिंह शामिल थे।

जहां ये शहीद हुए थे, स्वतंत्रता मिलने के बाद वहीं उनके शहीद स्मारक का निर्माण हुआ है, जहां से गुजरते हुए हर इंसान बड़े ही अदब से इनके सम्मान में अपनी शीष झुकाता है।

इसके अलावा असहयोग, नमक सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा, वहावी, जैसे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के तमाम आंदोलन भी शामिल हैं जिन्हें बिहार और भोजपुरी क्षेत्र ने अपनी ताकत प्रदान किया। उन आंदोलनों में दम भरा।

Hkkt ijh lkfgR; e jk"Vh; pruk

स्व. डॉ. अर्जुन तिवारी

अपना देश भारत भारतवर्ष केवल भारतवासियों का ही घर नही हैं यह तो समस्त संसार की सभ्यता, संस्कृति का भण्डार है। दर्शन, विज्ञान, सभ्यता संबंधी बातें यूनान ने भारत से सीखी और सारे जगत में फैली। हमें यह जानना चाहिये कि अरब, यूरोप में जो भी ज्ञान का प्रकाश फैला वह भारत से ही प्रसिद्ध यूनानी विद्वान ऐरियन ने लिखा है'

''जो लोग पूर्व (भारत) से आकर यूनान में बसे थे और जिन्होंने वहाँ के असभ्य निवासियों को अपने अधीन किया, वे कैसे थे? वे देवताओं के वंशज थे, उनके पास विपुल सोना था, वे शानदार रेशम व ऊनी दुशाले ओढ़ते थे वे बहुमूल्य रत्नों के हार पहनते थे।

अपना देश अरूण मधुमय है, श्रीमद्भागवत् के अनुसार–

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु थे भारतभूमि भावे। स्वर्गपिवर्गास्पद हेतु भूते भवन्ति भूया पुरूषाः सुरन्वात्। भारतीय संस्कृति की चमक आज के ऐटम युग में भी हम गांधीजी के व्यक्तित्व में देख सकते हैं। वही चमक है जिसने शताब्दियों पूर्व भगवान बुद्ध के व्यक्तित्व में विकास पाकर समूचे संसार को प्रमाणित किया था।

राष्ट्र कवि रामधारी सिंह, ने लिखा है ''केवल भारत ही एक ऐसा देश हैं जिसका अतीत कभी मरा नहीं, वह बराबर वर्तमान के रथ पर चढ़कर भविष्य की ओर चलता रहा हैं। भारत का अतीत कल भी जीवित है और आगे भी

जीवित रहेगा'' देवतात्मा हिमालय की तलहटी से नेपाल तक और विंध्य पर्वतमाला के बीच गंगा जमुना, गंडक, घाघरा, राप्ती, सोनभद्र के तट पर जो मन भावन वन उपवन है वही असली भोजपुर क्षेत्र हैं। देवारण्य, सारण्य, चम्पारण्य, विन्ध्यारण्य ये चार स्वर्णचतुर्भज क्षेत्र भोजपुरी संस्कृति से सराबोर है। भोजपुरी को 'अग्रजन्मा' के रूप में पहचाना जाता है। यहीं विश्वामित्र ने राजपाट छोड़कर ऋषि परम्परा को अपनाया और राजर्षि हो गए। बक्सर भोजपुरी क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण भू–भाग हैं, जहां पुरूषोत्तम राम ने 'ताड़का सुर' का वध किया तथा अहिल्या का उद्धार हुआ। विश्वामित्र मिथिला और अयोध्या के मध्य सुख–शांति के एक संस्थापक थे। विंध्यारण्य में मोक्षधाम (काशी), गाधि धाम (गाजीपुर), भृगु धाम (बलिया), विश्वामित्र धाम (बक्सर) सम्मिलित हैं जिसे भोजपुर अंचल का प्राणतत्व माना जाता है। देवारण्य में देवरिया, गोरखपुर, बस्ती, कुशीनगर, सिद्धार्थ नगर विराजमान है। सारण्य में सारण, गोपाल गंज, वैशाली तथा चम्पारण्य में पूर्वी चम्पारण्य, पश्चिमी चम्पारण्य, मुजफ्फरपुर जैसे जनपद आते है। ये सभी स्थान अति पावन शांति मंत्र के उद्घोषक हैं, जैसा कि डॉ. स्वर्ण किरण का उद्गार है।

भारत के माथे की बिन्दी
पली आश्रमी भूमि की
संस्कृति के सौरभ से
पूरित सुरभित
शांतिमंत्रवत् कोमल शीतल
रूप अधिक आकर्षक।

गुरू गोरखनाथ, संत कबीर, वीर बाँकुड़ा, कुँवर सिंह महापंडित राहुल सांकृत्यायन लोकश्षी भिखारी ठाकुर, देशरत्न बाबू राजेन्द्र प्रसाद, लोकनायक जयप्रकाश, शहनाई सम्राट बिस्मिल्ला खां, जैसे इतिहास निर्माता नर–रत्नों के चलते जीवन्त शानदार महफिल सजी हुई है। इन महापुरूषों की

कथनी–करनी कलम–दवात से अंकित कला और संस्कृति साहित्य ही भोजपुरी साहित्य का प्रमाण है। मकान से बधाना तक, चौपाल से कार्यशाला तक कवि चर्चा से कवि सम्मेलन तक, रेडियो से टी.वी. और सोशल मीडिया तक, पूर्वी से विश्वभूमि तक व्याप्त बेजोड़ लोकवाणी में भोजपुरी का खांटी रूप प्राप्त है। भोजपुरी साहित्य कोई बौद्धिक विलास नहीं, यह तो दिलदार लोगों के दिल की पुकार है, उनके मन का हिलोर है, उनकी आत्मा का उद्‌गार है।

भोजपुरी के अकूत संस्कार–गीत, जागरण–गीत, कथा–वार्ता, नाटक, उपन्यास निबंध में भोजपुरी धरती की संवेदना मातृभूमि का गौरव गान समाज हित के लिये सृजित साहित्य मिलता है। इन रचनाओं में देश–विदेश समाहित है जिसमें विश्व एक कुटुम्ब की तरह समाहित है। इसी भोजपुरी साहित्य के चलते विश्व ग्राम का रूप साकार स्पष्ट होता है। भोजपुरी में लालित्य, माधुर्य के साथ अपनत्व की भावना भरी हुई है। इसका राष्ट्रीय चेतना पर विचार करते समय जॉन रस्किन बरबस याद आ जाते है। उन्होंने लिखा है कि विवेकपूर्ण लोगों का छोटा सा दल असंख्य मूर्खों के जंगल से अच्छा है। जिस राष्ट्र ने अपने स्वरूप को पहचान लिया वही सच्चे साम्राज्य को पाने का अधिकारी है।

अपने प्राचीन ग्रंथो में राष्ट्रवाणि वैविशः (जनता ही राष्ट्र को बनाती है।) – ऐतरेय ब्राम्हण। दूसरे स्थान पर रस्किन ने कहा– प्रेम और भ्रातृत्व को अपनाकर एक विशाल कुटुम्ब की तरह अपनी वृद्धि करने में ही राष्ट्र की सच्ची शक्ति वर्तमान है। जनसंख्या की वृद्धि से अथवा दूसरे देशों को हड़प कर कोई भी राष्ट्र शक्तिशाली नहीं हो सकता।

राष्ट्रीय चेतना के उद्‌भावक वाल्टर स्काट थे। जिनकी पंक्तियां स्वदेश प्रेम, स्वदेशाभिमान को प्रदर्शित करती है–

Breathes these the man with soul so bad
Who never to himself lath Said
This is my own my native land

इसी का अनुवाद मोती बी.ए. ने किया ''वह भी कोई प्राणी है, जो न देश अभिमानी है। यदि न हो, तो उसके रग में खून नही हैं, पानी है। ऐसा ही भाव इस लोक प्रचलित कविता में है–

जो भरा नहीं है भावों से बहती जिसमें रसधार नहीं

वह हृदय नही है पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।

कविवर क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने अपनी रचना 'क्रान्ति–दिवस में राष्ट्रीय चेतना की अवधारण को सोदाहरण स्पष्ट किया है–

राष्ट्र चेतना के मूल में ऋग्वेद का 'यतेमहि स्वराज्य में' (हम स्वराज्य के लिये सदा प्रयत्न करतें रहेंगे) है। ज्यों ही पराधीनता का आतंक दिल से निकल गया, बस समझ लें स्वराज्य मिल गया। भय ही पराधीनता है।, निर्भयता ही स्वराज्य है। स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। इसे कोई छीन नहीं सकता। भोजपुरी के जानेमाने रचनाकार पं चन्द्रशेखर मिश्र, की आकांक्षा थी।

''गीत की बात करो मत करो मीत, सिंगार–पटार कहां से जुटाऊँ ? चाह यही रहती है उपेक्षित–भोजपुरी इतिहास सुनाऊँ, शूल उगांऊँ नहीं यदि बाग में, फूल की लाज कहाँ से बचाऊँ। नेह लगा जब छूरी–कटारी से, चूरी–अँटारी के क्या गुन गाऊँ ? कुंवर सिंह महाकाव्य में मिश्र जी ने कहा–

छोड़ के वीर भरी कविता, रसदूसर में कोई गावत नाहीं
छूड़ी कटारी बिकई सगाऊ, चुरिहाही गाऊँ में आवत नाही।
ओकर जिनगी ठुई कहड़ी, कड़ माटी से जेन निबांहला नाता
अइसन लागत कि पनिहारि, के भेस में रोवली भारत माता।

अपना भारत सदैव आभारत रहता है। यही एक ऐसा राष्ट्र हैं जो स्वतः आलोक मय होकर दूसरों को भी आलोकित करता रहता है। प्रकृति के अभिन्न अंग अरण्य, वन, नदी, पर्वत–ये सब हमारे मुनियों, सन्त –महात्माओं के

साधना–उपासना स्थल रहे हैं। कल–कल प्रवाहित सदानीरा के तट पर बने आश्रम सद्भावना, सत्कर्म, सद्धर्म के कुंजीमूल स्वरूप हैं। इसीलिये डॉ. इकबाल का कहना है–

गोदी में खेलती हैं उसकी हजारों नदियां
गुलशन है जिनके दम से रश्के जहाँ हमारा।

हमारा राष्ट्रीय जीवन अगर जनपदों से अपनी प्राणशक्ति अर्जित करता है तो हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी भी अपनी अभिन्न जनपदीय भाषाओं यथा भोजपुरी, मगही, मैथिली, ब्रजभाषा, अवधि, खड़ी बोली, बुंदेली आदि से अपनी संजीवनी ग्रहण करती है।

भोजपुरी हिन्दी प्रदेश के हृदय केन्द्र में स्थित ऐसी भाषा नाड़ी है जिसकी वृहत्तर परिधि उत्तर प्रदेश के बनारस–गोरखपुर से लेकर बिहार के आरा छपरा तक फैला है, जिसकी प्रसार भूमि एक ओर भारत में कोलकाता और मुम्बई जैसे महानगरों में प्रवासी मजदूरों, व्यवसायियों और नौकरीपेशा लोगों के कारण है तो भारत के बाहर फिजी, ट्रिनीडाड, सूरीनाम, और मारीशस तक में गिरमिटिया प्रथा के चलते यहाँ से गये लाखों प्रवासियों के माध्यम से जीवित है। यह भोजपुरी भाषा एक ओर जनता की विशाल एकता का मंच और भारत की अन्तरप्रादेशिक एकता का अभिन्न अंग बनता ही है दूसरी ओर भारत और उपर्युक्त देशों के बीच के सम्बन्धों की भावनात्मक दृढ़ता की गारंटी भी है।

भोजपुरी भाई राम के ' माथे पगड़ी कान्हे लट्ठ तब देख भोजपुरिया ठट्ठ' के पहनावा के साथ अकड़ के चलना, ठाट से झूमने का व्यवहार होता है। इसी भोजपुरी क्षेत्र से वारेन हेस्टिंग्स माना खड़ा हुआ, किसी तरह अपने को बचा पाया–

घोड़ा पर हौदा, हाथी पर जीन
जल्दी से भाग गइल वारेन हेस्टिंग्स।

'मों सो कहाँ सीकरी सो काम' के अनुयायी भोजपुरिया 'कवयः' क्रान्तिदर्शिकः' के पक्षधर है–

झूठ ना बखाने जाने, छूत घात नहीं मानें
माने-जाने सम के, ना जाने जी हुजुरियां।
धुरिया चढ़ावे जाने, पीठ ना दिखावे जाने
दीठ ना लगावें जाने, आन के बहुरियां।
आन पर लड़ावे जाने, जान के ना जाने जान
चले उतान जाने, तान के लडरिया।
बानी मरदानी जाने, चाल मस्तानी मानु,
होला एक पानी के मरद भोजपुरियां।

भोजपुरियां साहित्यकार के पानी, बानी और रबानी में लेशमात्र का 'जी हुजूरी' या 'चापलूसी' 'ठकुर सुहाती' की प्रवृत्ति नहीं होती। इनमें चिन्तन, मनन, विचार–धारा दर्शन में पारदर्शिता, समाजोपयोगी, राष्ट्रीयता के भाव प्राप्त होते हैं। राष्ट्र प्रेम के चलते ये अपना जीवन तुच्छ समझते हैं।

बारह बरिस ले कूकुर जींवे, औ तेंरह ले जिए सियार
बरिस अठारह छत्री जीवें, आगे जीवन के धिक्कार।

सोच विचार में आजादी, धर्म कर्म की आजादी, अभाव से आजादी, आतंक से आजादी, ये चारों आजादी हर व्यक्ति को सुलभ होना चाहिये। उसके सन्दर्भ में गोपाल सिंह नेपाली की पंक्तियां घ्यातव्य हैं। सिद्धांत, धर्म कुछ और चीज, आजादी है कुछ और चीज, सब कुछ है, तरू, डाली पत्ते, आजादी है। बुनियाद चीज इसलिए वेद, गीता, पुराण, दुनियां ने लिखे स्याही से लेकिन लिखना आजादी का इतिहास रूधिर की धारा से।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि सन् 1292 ई. में पृथ्वीराज के पराजय के साथ भारत देश पर ग्रहण लग गया। सन् 1757 ई. के प्लासी युद्ध में फिरंगी

शासन का वर्चस्व हो गया। हम भारतवासियों पर अत्याचार पर अत्याचार होने लगे। जिनकी मुक्ति हेतु सभी हिन्दुस्तानी जुझारू रूप अपनाने लगे। बाबू कुँवर सिंह वीर, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, खुदीराम बोस, आश्फाक् उल्लाह खाँ, रामप्रसाद बिस्मिल, सुभाष बाबू जैसे जुझारू लोगों की शहादत पर गोखले–तिलक –गाँधी की तप साधना पर जलियां वाला बाग के रक्त रंजित भूमि पर चौरीचौरा काण्ड, और भारत छोड़ो आन्दोलन के चलते आजादी के सूर्य का उदय हुआ। और 15 अगस्त, 1947 ई. को अपना देश स्वतंत्र हुआ जिनके मूल्य में राष्ट्रीय चेतना थी।

है देश को स्वाधीन करना, जन्म मरण संसार में
तत्पर रहूँगा मैं सदा, अंग्रेज दल संहार में।

रामप्रसाद बिस्मिल

सन् 1757 से 1885 ई. तक आजादी के लिये सुगबुगाहट की अवधि में विचित्र तरह का नेवता दिया गया–

बा जान गेंबाबई के नेवता, चूड़ी फोर, बाबई के नेवता
सिन्दूर पोछाबाबई के नेवता, बा रांड कहाई के बाबई के नेवता।

भोजपुरी प्रदेश का ऐतिहासिक गौरव विशाल है। इसके हृदय में काशी है जहां बुद्ध, शंकर, रामानंद, वल्लभ, रैदास, कबीर–तुलसी, भारतेन्दु, प्रेमचन्द्र–प्रसादरामचन्द्र शुक्ल, त्रिलोचन, नजीर, किशन, महाराज, बिस्मिल्ला खाँ फले फूले। 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में यहां के चप्पे–चप्पे पर हिन्दू–मुस्लिम जनता ने एकताबद्ध होकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद को टक्कर दी और सत्तावन के नायक वीर कुँवर सिंह –अमर सिंह प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के जन नायक बन कर उभरे। समूचे स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भोजपुरी भाषी जनता ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। खासकर 1942 के स्वतः स्फूर्त जन उभार के दौरान जगह–जगह बर्तानिया राज को खत्म करके जनता का राज कायम

किया। आधुनिक युग में यहां की धरती ने बाबू राजेन्द्र प्रसाद, जयप्रकाश नारायण, डॉ. भगवान दास, श्रीप्रकाश, संपूर्णानंद, लाल बहादुर शास्त्री, बाबू जगजीवन राम, राजनारायण, और चन्द्रशेखर जैसी राजनीतिक विभूतियों और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन से लेकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, तक साहित्य के महारथियों को जन्म दिया।

चित्रकला, संगीत, हस्तशिल्प, कारीगिर में यहाँ की सृजनात्मकता की विशिष्ट छाप मौजूद है। आर्थिक रूप से पिछड़ा होने के बावजूद शिक्षा और साहित्य–कला के क्षेत्र में भोजपुरी अंचल कभी पिछड़ा नही रहा। भोजपुरी का साहित्य अत्यन्त सम्पन्न है जिसमें लोकगीतों, भाषाओं, कहावतों, लोक कथाओं, व्रत कथाओं और शिशु गीतों का भारी खजाना मौजूद है। यहां भिखारी ठाकुर जैसा महान् जन–कलाकार अपने नाटकों के लिए गाँव गाँव में विख्यात रहा है।

रामलीला, धनुष यज्ञ, आदि की परम्परायें सैकड़ों वर्षों से गांव और कस्बों में जीवित चली आ रही है। यहां के ग्रामाचंल और कस्बे, लोक कला और लोक विधा के गढ़ हैं। महेन्द्र मिसिर, परीक्षण मिश्र, मोती बी.ए., चतुरी चाचा, रामेश्वर सिंह कश्यप (लोहासिंह) कुबेरनाथ राय, विवेकी राय, शारदा सिन्हा, और स्वामी विमलानंद सरस्वती जैसी प्रतिभाओं ने कला और साहित्य के संस्कारों को जन–जन तक पहुंचाया है। भोजपुरी में अब दर्जनों पत्रिकायें निकलती है। फिल्मों में उनकी गूंज सबसे अलग से पहचानी जा रही है। भोजपुरी के अब कई साहित्य संगठन और सम्मेलन है। उसके प्रकाशित साहित्य भण्डार में और भी लगातार वृद्धि हो रही है।

महान आजाद विद् डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है– हिन्दी में जनपद जन का प्रदर्शन, दर्शन है। जनपद जन के धर्म का शिखावन तथा ज्ञानपद जन के साथ मिलकर धर्म विषयक पूछताछ। इसमें डॉ. अग्रवाल ने निष्कर्ष निकाला कि लेखक को अपना ध्यान जनता के जीवन पर केन्द्रित

करना चाहिये। उनका मानना है कि '' जनता ही हमारे उद्‌ीयमान राष्ट्र की पहली देवता है। हमारे सब आन्दोलनों के मूल में और विचारों के केन्द्र में जनता प्रतिष्ठित हैं। यह सत्य जनपदी अध्ययन का मेरूदण्ड है''

उन्होनें अर्थव वेद के पृथ्वी सूक्त से प्रेरणा लेकर राष्ट्र की परिभाषा का नया सूत्र दिया। भूमि, भूमि पर बसने वाला जन और जन की संस्कृति इन तीनों के सम्मेलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है। इनके इस सूत्र में विविधता के तत्व राष्ट्र जीवन के मूलभूत एकता के बाधक नही हैं। इन्होंने विविधता को स्वाभाविक माना और उसे जबर्दस्ती मिटाने का मनुष्य की मूर्खता। जिस आकार भूमि में भौगोलिक और प्राकृतिक विविधता है उसी आकार भूमि पर बसने वाले जनों और उनकी संस्कृतियों में विविधता है। सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता। विभिन्नता के साथ एकता का समन्वय–यही पृथ्वी सूत्र का समग्र भाव है। अगर लेखक को पृथ्वी पुत्र बनना है, भूमि, जन और संस्कृति का परिचय पाना है तो उसे लोक के साथ संमनस्क होना होगा। उसे प्रत्येक गांव को पुस्तक और प्रत्येक जन को उसका अनमोल पृष्ठ समझना होगा। डॉ. अग्रवाल का यही है संदेश जो जनपदी अध्ययेताओं की आगामी पीढ़ियों के लिये वे छोड़ गये है। जनपदी अध्ययन की यह नजर केन्द्र की विरासत है।

मातृभूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्या, जननी जन्म भूमस्य स्वर्गादपि गरीयसी' की महानता के सन्दर्भ में स्मरणीय है– कौंम कि तारीख से जो बेखबर हो जायेगा। रफ्ता–रफ्ता आदमीयत खोके खर हो जायेगा।

The nation live on their Poet in their Present for the Future

शानदार था भूत, भविष्य भी महान् है। अगर सम्भाले आप आज जो वर्तमान है। स्वदेश– भक्ति, स्वदेश–प्रेम, स्वदेशाभिमान, स्वतंत्रता, स्वराज्य के सन्दर्भ में दयानन्द सरस्वती ने लिखा– विदेशी राज से चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों ना हो, स्वदेशी राज उनमें कितनी ही त्रुटियां क्यों न हो अच्छा होता है।

आजादी के प्रति जितना समर्पण भाव भोजपुरी में है उतना अन्यत्र नही। बागी बलिया के कवि प्रसिद्ध नारायण सिंह ने लिखा है–

निरबल, निर्धन, निरगुण, गंवार
अलग आपन बोली विचार
कण-कण में जेंकरा क्रांतिबीज
अइसन भोजपुर टप्पा हमार
इतिहास कहे पन्ना पसार।

भोजपुरी बोली से बढ़कर एक भाषा है और भाषा से बढ़कर एक मनोरम संगीत है। इसे जीवन का ऑक्सीजन (प्राण–वायु) कहा गया है। जिससे रग रग में शक्ति सामर्थ्य, और पौरूष कथा प्रगति का संचार होता है। वस्तुतः भोजपुरी मां गंगा है जिसमें नहाने पर तन –मन से छप–छप निर्मल हो जाता है। भोजपुरी वह संस्कार है जिससे कई पीढ़ी परम्पराओं से जुड़ती है। भोजपुरी महान पर्व, उत्सव, व्रत है जिससे सद्विचार, सद्भाव सत्कर्म, की त्रिवेणी पर मानव अपना आसन जमाकर बैठता है। लोहा सिंह के रचयिता बाबू रामेश्वर सिंह कश्यप ने लिखा है–

फक्कड़ कबीर के बोली में बोलेवाला
ई भोजपुर विद्रोह आग के पुतला है
चन्द्रदहों जिला चिग्घाड़ उके मिल एक बार
तब ओवस आगे सैउसे दुनिया कुछ ना है।
जब भोजपुर के बिखील तागद मिल जाई
तब उमगी चढ़ल जवानी से घन के मस्ती
तब ओकरा आंको खातिर बहुत घौंर का आसमान
तब ओकरा खातिर बहुत छोट बांटे धरती।

भोजपुरियां इलाके से ही महात्मा गांधी को विश्वबंध बापू बनाया जिसका साक्षी तीन कठिया रिवाज था। सन् 1917 ई. में राजकुमार शुक्ल के आग्रह पर गांधी जी चम्पारण आए, सबकी दीन दशा देखी तथा अंग्रेज शासकों को श्रीहत

किया उस समय यही गाया जाता था–

गांधी जी से लड़इयां नाहीं, जितबे फिरंगिया
चाहे करू कितनों उपाय
भल-भल मच्छवा उड़वले एहि देशवा में
अब जरहें कोठियां बिकाय।

कमलाप्रसाद मिश्र 'मिश्र' के साथ सभी भोजपुरियों ने गाया –

भारत की पहली क्रांति में कुंवर अमर ने राखी लाज
शाहबाद के वीर सपूतों , हंसी न होने पावें आज
भारत में जब जब क्रांति भइल
भोजपुर मनई तब रखले लाज
महिमामय माटी के सलाम
देश के रत्न राजेन्द्र जी हैं
तिनिरंग -पताका लिए ललकारें।
भागो फिरंगी यहां से अभी
बार बार सभी यही बात उचारें।

डॉ. अम्बेडकर जी ने लिखा है–

''अगर आपके पास मातृभाषा है तो सांस्कृतिक विरासत भी होती है। जिसका अपना अतीत और भविष्य होता है।'' भारत देश के लगभग तीस करोड़ नागरिकों की मातृभाषा भोजपुरी है जिसकी अपनी परम पावन संस्कृति है यहाँ के जन–जन में बेमिसाल राष्ट्रभक्ति है। भोजपुरी साहित्य के नाटक, काव्य, निबंध, उपन्यास, कहानी में बेजोड़ राष्ट्रीयता, मानवीयता तथा 'लोकाः समस्ताः सुखिनः भवन्तु' संबंधी सद्विचार, सत्कर्म, सद्धर्य की पावन त्रिवेणी प्रवाहित है जिसके चलते भोजपुरी गौर विदीप्त है, इसका लालित्य मनोरम है, इसका भविष्य उज्जवल है।

Hkkt ijh dyk vkj ledkyhu dykdkj

ज्योतिष जोशी

भोजपुरी वृहदतर भारतीय समाज की भाषा है। देश की 20 करोड़ आबादी भोजपुरी बोलती है। बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखंड, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों के लगभग पचास जिले भोजपुरी भाषी हैं। इसके अलावा दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता आदि महानगरों की दो करोड़ आबादी भोजपुरी बोलती है। भारत के बाहर मॉरीशस, फिजी, सूरीनामा, ट्रिनिडाड, गुयाना, मालदीव, हॉलैण्ड, सिंगापुर, वर्मा, नेपाल, जमैका और दक्षिण अफ्रीका में बड़े पैमाने पर भोजपुरी भाषी रहते है और अपनी भाषा के साथ–साथ अपनी संस्कृति को भी संरक्षित किये हुए हैं। यह सच है कि इतना बड़ा भाषा–समाज किसी भी दूसरी भाषा का नहीं है। भोजपुरी हिन्दी छत्तीस उपभाषाओं में एक है जो अपनी अकूत संपदा से हिन्दी को समृद्धि करती आ रही है। भोजपुरी के आदि कवि कबीर हैं जिनकी अक्खड़ता और पारदर्शिता भोजपुरी जन–चेतना में प्रवाहित है।

भोजपुरी में लोक गीत, लोक–कथा और लोक–परम्पराओं की अकूत संपदा है। साहित्य की श्रुत परम्परा से निकलकर भोजपुरी में सृजन की प्रक्रिया भी तेज गति से बढ़ी है और सभी विधाओं में सृजन हो रहा है।

भोजपुरी अंचल में कला की परम्परा पुरानी है। इस परम्परा को लोक चित्र शैली की परम्परा कह सकते है। भोजपुरी का विस्तार भले ही देश के विभिन्न प्रान्तों में हुआ है, पर उसका मूल अंचल बिहार की भोजपुरी पट्टी ही है। इस अंचल के पड़ोस में स्थित मिथिलांचल की तरह न तो 'मधुबनी चित्रकला' जैसी

लोक चित्रशैली है, न मगध अंचल में प्रचलित 'मंजूषा चित्र शैली'। पर यहाँ जो कला की शैलियाँ हैं या विभिन्न प्रकार, उन सबका सम्बन्ध लोकाचारों, रीति–रिवाजों और मांगलिक अनुष्ठानों से है।

चित्रांकन की एक महत्वपूर्ण शैली इस अंचल में सदियों से चली आ रही है और वह है– सृजनी या दुसूती कला। इस चित्रशैली का वैसा व्यावसायिक विकास भले न हुआ हो जैसा मधुबनी शैली का हुआ, पर इस शैली ने भोजपुरी अंचल की चित्रांकन पद्धति की श्रेष्ठता प्रमाणित की है। इसकी सबकी बड़ी खासियत है– भोजपुरी अंचल के प्रत्येक परिवार की कला होना। यह शैली हर परिवार में शामिल है जहाँ की लड़कियाँ और स्त्रियाँ सृजनी या दुसूती पर विभिन्न प्रकार के चित्रों को विविध रंगों में धागों से सूई से बनाती हैं। इनमें देवी–देवता, पशु–पक्षी से लेकर आत्मचित्र बनाने तक की परम्परा है। इसमें नदी, पर्वत, पठार भी बनाते है तो ऋतुओं के अनुसार बदलते समय को भी अंकित किया जाता है। यह काम बहुत बारीकी का है। कलाकार स्त्री एक–एक सूत की गिनती कर अपेक्षित खाका के अनुसार इसका आकल्पन करती है। यह अंकन वर्गाकार और ज्यामितीय होता है। इसमें चित्रफलक की माप और उसके आयतन के अनुसार संयोजन बहुत कुशलता की माँग करता है। यह बहुत मिहनत और प्रतिभासम्पन्नता की माँग करती कला है। इसे कढ़ाई कला भी कहा जा सकता है। यह दिलचस्प सच्चाई है कि हिमाचल प्रदेश के अधिकतर इलाकों में यही कढ़ाई कला हिमाचली कला के रूप में ख्यात हो गई है और उसकी व्यावसायिकता माँग भी बहुत है। राजस्थान, गुजरात और उत्तर प्रदेश में भी यह शैली मिलती है। जिसमें व्यावसायिकता अधिक है, वह भाव प्रवणता नहीं जो भोजपुरी दुसूती चित्र शैली की है। दुसूती चित्र शैली दोसूत वाले खुरदरे सफेद कपड़े पर अंकित होती है जिसके चित्र फ्रेम किये जाते है। रूमाल, चादर, तकिया आदि पर भी यह अंकन शैली प्रचलित है जिसे देखकर कोई भी मुग्ध हुए बिना नहीं रहता।

कपड़ो पर चित्रकारी और कढ़ाई के बाद भोजपुरी अंचल की दूसरी महत्वपूर्ण का कलात्मक खिलौना बनाने का है जिसमें भोजपुरी अंचल की स्त्रियाँ लड़कियाँ रंग–बिरंगे कपड़ो से विभिन्न किस्म के खिलौनों, पुतलों और देवी–देवताओं की आकृतियाँ बनाती है। यह कलात्मक कार्य लड़कियों की सुरूचि तथा उनके सांस्कृतिक परिवेश को सूचित करते हैं। इन खिलौनों को लड़कियाँ ब्याह के बाद विदाई में अपने ससुराल ले जाती हैं जिसे बहुत शुभ माना जाता है।

इस कलायत्न में बहुत श्रम लगता है और सृजनात्मक कल्पनाशीलता भी आवश्यक है। लड़कियाँ अपेक्षित आकृतियाँ बनाने के लिए उसके आकार का कपड़ा काटती हैं, भूसा भरती हैं, सिलती है, तथा उसकी माप के मुताबिक अंगो को तैयार करती और उसे सिलकर रंगारंग गोटों से सजाकर उन्हें ऐसा मोहक रूप देती है कि देखते बनता है। हाथी, ऊँट, बाघ, स्त्री–पुरूष, देवी–देवता जैसे सब के सब इस कलाकारी में नया जीवन पाते हैं।

कोहबर-लेखन - भोजपुरी अंचल की महत्वपूर्ण कला भी है। 'कोहबर' का शाब्दिक अर्थ– वह स्थान जहाँ विवाह के समय कुल देवता स्थापित किए जाते है। विवाह में एक रस्म होती है जो 'कोहबर' के नाम से जानी जाती है। इस रस्म में वर–वधू विवाह के बाद गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते है। इस अवसर पर महिलाओं द्वारा भिन्ती चित्र बनाया जाता है जिसे कोहबर–लेखन कहा जाता है। यह एक अनोखी तथा अविस्मरणीय कला परम्परा के रूप में स्थापित है। यह कला यहां के जनजीवन में समाहित है। यह गुप्तकाल तथा मध्यकाल के गुफा चित्रण से अलग है। इसे हम बंगाल की भिन्ती चित्रकला या राजस्थान में किए जाने वाले यथार्थपरक चित्रणों में नही जोड़ सकते। कोहबर–लेखन भोजपुर की एक ज्यामितीय पद्धति की रेखांकन कला है, जो पूर्णतः धार्मिक मान्यताओं पर आधारित है। इस शैली के चित्र परम्परागत होते हैं। इसमें महिलाएँ अपने ससुराल या मायके की कुल रीति के अनुसार ही इसकी रचना

करती हैं इसे प्रारम्भ करने से पहले महिलाएं कुल देवता का स्मरण करती है तथा गीत गाते हुए लेखन करती है। इन लोकगीतों के माध्यम से कोहबर में बनी रेखाओं, संकेतो की व्याख्या करती हैं। इस की रचना के पूर्व दीवार पर कली–चूने से सफेदी की जाती है। बाद में गेरू से रेखांकन किया जाता है। चित्र में कहीं–कहीं सिन्दूर तथा काजल का प्रयोग भी किया जाता है। रेखांकन करने के लिये ब्रश के बदले बांस की कूंची का इस्तेमाल किया जाता है जिसे औरते स्वयं तैयार करती हैं। कोहबर का स्वरूप वर्गाकार, चतुर्भुजाकार अथवा आयातकार होता है। भोजपुर में कोहबर–लेखन का क्षेत्रफल पांच वर्ग फुट से लेकर पैंतीस वर्ग फुट तक का होता है। इसमें धार्मिक आस्थाओं तथा जनजीवन पर आधारित कुछ प्रतीक चिह्न बनाए जाते है। जो पूर्व निर्धारित हैं। ये चिह्न वैदिक काल से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इस शैली के चित्रों में प्रारम्भ से आज तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ। ऐसे प्रतीक बांस, पुरैन–पत्ता, स्वास्तिक चिह्न, कंघी, नाल्की, पाल्की, कहार, पान पत्ता, लवंग, सुपारी शिवामाई, मछली, कछुआ, देवी–देवता या मनुष्य की रेखाकृति इत्यादि हैं जो पूर्णतः कोणात्मक या ज्यामितीय होती हैं। उनमें रंग भरा भी जाता हैं पर प्रधानता केवल रेखाओं की होती हैं कोहबर लेखन में भी घरेलू महिलाएं सिद्धहस्त होती हैं, वे काफी लयपूर्ण रेखाओं से इसका सृजन करती हैं।

कोहबर की कार्यविधि तथा सांकेतिक चिह्नों का अर्थ इस प्रकार है–बांस का प्रयोग वंश के लिए किया जाता है। जिस प्रकार एक बांस में अनेकों बांस का उदय होता है, उसी प्रकार नवविवाहितों की वंश बढ़ोतरी की कामना की जाती हैं पुरैन पत्ते का प्रयोग इसलिए किया जाता है कि जिस प्रकार पुरैन का पत्ता लतरनुमा होता है, उसी प्रकार इस परिवार की बढ़ोतरी हो तथा वह पल्लवित–पुष्पित हो। कमल भारतीय संस्कृति का प्रतीक चिह्न है जो पुरैन के पत्तो के साथ जन्मता है। यानी संसार में रहते हुए उससे विरत रहकर अपने को पुष्पित करना भी इसका अर्थ है।

कोहबर–लेखन को देखने के बाद ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि यह लोककला काफी प्रतीकात्मक तथा समृद्ध है, लेकिन घर के भीतर तक ही सीमित है क्योंकि इसका प्रयोग घरेलू महिलाएं खास आयोजन पर ही करती है और आयोजन समाप्त होते ही इसे भूल जाती है जबकि इसके सांकेतिक चिह्न काफी प्रभावशाली तथा आकर्षक है। इसका प्रयोग समकालीन कला में किया जा सकता है और इसे नया रूप दिय जा सकता है।

पीड़िया-लेखन - इस अंचल की एक अन्य महत्वपूर्ण कला है। 'पिड़िया' शब्द संस्कृति के के 'पिंडिका' से बना है जिसका अर्थ होता है देव मूर्ति की पिंडी। कार्तिक शुक्ल पक्ष द्वितीया को गोधन पूजा के बाद गांवभर की लड़कियां किसी एक स्थान पर उसी गोबर से पिड़िया लगाती हैं जिस गोबर से गोधन बनाया जाता है। जिस युवती के जितने भाई होते हैं उतने सोरहिया (सोलह) पिड़िया लगाती हैं। यानी दीवार पर छोटे–छोटे पिंड चिपकाती है। पुनः पन्द्रह दिनों के बाद उसे दोहराती हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो पुनः एक–एक सोरहिया पिड़िया लगाती हैं। प्रत्येक दिन रात में वहीं बैठकर गीत गाती है। लड़कियां तीसों दिन मुंह–हाथ धोने के बाद कथा सुनती है। तत्पश्चात् अन्न–जल ग्रहण करती है। हालांकि दिन–प्रतिदिन कथा सुनने की परम्परा कम होती हा रही है। पिड़िया से सम्बन्धित दो कथाएं प्रचलित हैं। पहले दिन जो कथा सुनती हैं उसे 'छोटकी कथा' कहते हैं और उसके बाद पंद्रह दिन जो कथा सुनती हैं उसे 'बड़की कथा' कहते हैं।

अगहन शुक्ल पक्ष एकम को युवतियां पिड़िया रखती है। एकम की सुबह पिड़िया को दीवार से छुड़ाती हैं तथा छितनी (खचिया) में रखती हैं। दूसरे दिन सुबह किसी पोखर या तालाब में उनका विसर्जन करती हैं। विसर्जन के लिए भाई खचिया को अपने माथे पर लेकर घाट तक पहुंचाता है। पिड़िया लिखने के पूर्व दीवार को गोबर–माटी से लड़कियाँ अच्छी तरह लीपती हैं। दीवार सूख जाने के बाद एक विशेष रूपाकृति को हरे रंग से रंगती है। हरा रंग वे स्वयं

सेम की पत्री को पीसकर तैयार करती है। तत्पश्चात् चावल से निर्मित उजले रंग से चित्रों का सृजन करती हैं। ब्रश का निर्माण वे बांस की छड़ी के कूच कर कराती हैं। पिड़िया मुख्यतः वर्गाकार या आयताकार बनती है। आयताकार वृहद फॉर्म (रूपाकार) की परिकल्पना निश्चय ही अमूर्तरूप में किसी देवी की कल्पना है, क्योंकि इसकी बनावट में भी मानवाकृति का अहसास होता है। इसके भीतर आकृतियों का सृजन मुख्यतः रैखिक होता है। इसमें अलग से रंग नहीं भरे जाते। ब्रश संचालन बहुत ही सहजता के साथ किया जाता हैं किसी भी आकृति का पूर्व निर्धारित कोई रूप या खाका नहीं होता। वह युवतियों की कल्पनाशीलता पर निर्भर करता है कि वह किन–किन आकृतियों को किस–किस रूप में उकेरती हैं।

सूरज, चांद, बतख, डोली, कहार, पक्षी, फल, वृक्ष, मानवाकृति इत्यादि का रेखांकन इसमें किया जाता है। युवतियां इन चित्रों का सृजन चाहे जो सोचकर करती हों लेकिन कलात्मक दृष्टिकोण से देखें तो इसमें कई प्रतीकात्मक चिह्नों को उकेरा जाता है। इन रेखाओ में भले ही यथार्थ का अभाव हो लेकिन जिस शैली में आकृतियां बनाई जाती हैं वे अवश्य ही अलग से चर्चा की मांग करती है। पिड़िया देवी कई महीने तक घर–आंगन की दीवारो पर शोभा बनकर लोककला के रूप में रहती है। होलिका–दहन के पूर्व इस लोककला को मिटाया जाता है।

दउरा-डलिया - भोजपुरी कला का पारम्परिक शिल्प है। डलिया या दउरा का निर्माण गांवों में अमूमन हर घर की महिलाएं करती हैं लेकिन कुछेक औरतें इसकी विशेषज्ञ होती हैं। वे इसकी शिक्षा किसी खास संस्थान में नहीं लेती बल्कि घर–मुहल्ले की औरतों से सीखती हैं। बरसात के दिनों में जब कृषि कार्य संपन्न हो जाता है तो औरतें घर में खाली बैठने के बजाए अपने समय का उपयोग इसके निर्माण–कार्य में करती हैं। उसके बाद मूंज की पत्ती छीलकर पतली–चौड़ी पट्टी बनाती है जिसे बरूआ कहते हैं। तत्पश्चात् औरतें डलिया,

दउरा या झांपी का निर्माण करने के लिये बैठ जाती है। जिस रूपाकार या रंग–संयोजन के साथ दउरा आदि का निर्माण करना होता है उसका खाका औरतों के मस्तिष्क में पूर्व निर्धारित होता है। गेहूं के कई डंठलों को एक हाथ में समेटते हुए मूंज की पट्टी (बरूआ) को लपेटते हुए रंग–बिरंगे और विभिन्न आकारों में उसका निर्माण होता है। बरूआ लगाने के क्रम में कभी–कभी पानी का प्रयोग इसलिए होता है कि सूखे हुए डंठल आसानी से मुड़ सकें। चूंकि डंठल सीधा होता है और मोड़ने पर वह टूट सकता है इसलिए उसे पानी से भिगो दिया जाता है ताकि वह मुलायम हो सके और मनचाहे आकार में मुड़ सके। बरूआ लगाने के लिए औजार के रूप मे टीकुराई (लोहे का बना पतला सूआ जिसके ऊपर की बेंट लगी रहती है, छेदनी) का उपयोग किया जाता है। बार–बार टीकुराई से छेद किया जाता है और बार–बार उसमें बरूआ लगाया जाता है आवश्यकता के अनुसार बार–बार गेहूं के डंठल को औरते उसमें खोंसाती जाती है। इस तरह नीचे पतला तथा ऊपर चौड़ा गोल आकार लिए रंग–बिरंगे दउरा आदि का निर्माण होता है जिसमें औरतों की कठिन श्रम–साधना दृष्टिगत होती है। उसमें जो रेखाएं या चित्र उकेरे जाते हैं वे भी काफी आकर्षक होते है। कहीं–कहीं मौनी का निर्माण करते समय औरतें उसे हाथी, ऊंट, घोड़ा, मानव इत्यादि के आकार में ढालने की कोशिश करती है। मानव आकृति बनाते समय अर्धमूर्ताकार में गोलाई लिए हाथ पांव, सिर पैर इत्यादि को अलग–अलग सहजता के साथ एक –दूसरे में वे जोड़कर खड़ा करती हैं। जानवरों की आकृति भी इसी अंदाज में बनाई जाती है। इन आकृतियों में चटक रंगो का प्रयोग ज्यादा किया जाता है। इस तरह कई वस्तुओं का निर्माण औरतें काफी कलात्मकता के साथ करती है। हालांकि यह कला अब धीरे–धीरे विलुप्त होने लगी है। जबकि उसे लोककला के अंतर्गत रखते हुए राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय बाजार में लाया जा सकता है।

भोजपुरी अंचल में व्यावसायिक रूप से सफल शिल्प भी बहुत हैं जिनमें मुख्य शिल्प है–

काष्ठ कारीगरी

काष्ट कारीगरी का प्रभावशाली रूप यहां दृष्टिगत होता है। लकड़ी से निर्मित वस्तुएं मन को मोह लेती हैं। छोटे–छोटे खिलौने से लेकर कुर्सी, टेबल, दरवाजा आदि खूब बनाए हाते हैं। लकड़ी की विशाल मूर्तियां भी निर्मित की जाती है। इस जनपद में लकड़ी से कार्य करने वाले कारीगर को बढ़ई जाति से संबोधित करते हैं। इनका यह वंशानुगत पेशा है। यानी पीढ़ी–दर–पीढ़ी इस जाति के लोग काष्ठ कारीगरी का काम करते आए हैं। काफी श्रम करने वाले ये कारीगर अपनी कलात्मक दृष्टि की बदौलत लकड़ी के फलक पर विभिन्न तरह की आकृतियां उकेरते हैं। घरेलू उपयोग में आने वाली वस्तुओं को भी बहुत कलात्मक ढंग से बनाते है। इन सभी वस्तुओं की व्याख्या तो संभव नहीं है लेकिन कुछ एक वस्तुओं के माध्यम से इनकी कलात्मकता देखी जा सकती है। ठेकुआ बनाने के लिए अगरौटा का इस्तेमाल किया जाता है। अगरौटा पर जो आकृतियां, जो डिजाइन कारीगरों के हाथों बनती हैं वह देखने लायक होता है। अर्ध उभार शैली यानी मोटी लकड़ी को कुरेदकर उकेरी गई, आकृति छोटे–छोटे औजारों, बसुला, रूखानी, आरी आदि से निर्मित आकृति प्रभावशाली होती है। इसी तरह पीढ़ा खटिया–पलंग के पौवे, पलंग आदि का सम्पूर्ण ढांचा तो वे बनाते ही हैं। किसी–किसी भाग में पतली लकड़ी से विभिन्न तरह की डिजाइन बनाते हैं। कहीं–कहीं दरवाजे पर कथा–कहानी तथा किंवदंतियों से संबंधित आकृतियां भी इनके हाथों रची गई हैं। इस जाति की कलात्मक सोच एवं उसे मूर्त रूप में ढालने की क्षमता के साथ–साथ श्रम करने का शौक भी है। तभी यह सब सम्भव हो पाता है। देवी–देवताओं की मूर्तियां त्रिमायी यानी चारों तरफ से बनाते है। कहीं–कहीं लकड़ी के टुकड़ो को शरीर के विभिन्न भागों के रूप में जोड़कर बनाते है। यानी पहले शरीर के सभी अंगो को अलग–अलग बनाते है। बाद में जोड़ देते हैं। कहीं–कहीं मोटी लकड़ी को काट–काट कर अतिरिक्त लकड़ी को निकालते जाते हैं। और मन में बठी आकृतियों–मूर्तियों का ढांचा बना देते हैं कुल मिलाकर हम देखें तो

जीवनयापन की उपयोगी वस्तुएं तथा सजावट के लिए बनायी गई कलात्मक वस्तुओं का विस्तारित रूप यहाँ देखा जा सकता हैं आकृतियों पर रंगरोगन भी होता हे। इसके लिए स्प्रीट, चपरा, गेरू–गोंद आदि से रंग स्वयं तैयार करते हैं और मनचाहा प्रभाव देते हैं। पारम्परिक औजारों के साथ ही कई तरह के आधुनिक औजारों का प्रयोग अब लोहार भी करने लगे हैं जिससे थोड़ी मेहनत कम करनी पड़ती है लेकिन कल्पनाशीलता बरकरार रहती है।

लौह कारीगरी

इस अंचल में लौह कारीगरी भी खूब होती है। लोहार इस काम को प्रमुखता से करते है। घर–गृहस्थी से लेकर यातायात के संसाधनों के निर्माण में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यूं कहें तो सदियों से स्वतंत्र लोहे का सामान तो वे बनाते ही हैं लकड़ी–लोहे को जोड़कर अथवा लकड़ी को जोड़ने के लिए भी लोहे से निर्मित कील (कांटी) आदि का निर्माण भी वे करते हैं। हल–फार, पहसुल, हसुआ, चिमटा, दीया, कजरावटा, ताला, चाभी सिकड़ी आदि वे हर वक्त बनाते रहते हैं क्योंकि इसकी जसरत घर–घर में पड़ती हैं विगत कुछ वर्षों से जब बड़ी–बड़ी इमारतें और पुल इत्यादि बनने लगे तो उसमें लोहे का काम ज्यादातर होने लगा है। रेलिंग, रोशनदान, गेट, फाटक के कई रूप अब दिखाई देने लगे हैं। पतले–मोटे लोहे की परत (चादर) एक पतली–पतली छड़ के टुकड़े को जोड़कर विशाल आकृति बनायी जाती है। इसमें कई प्रकार की डिजाइन भी निर्मित होती हैं कहीं–कहीं लोहे का बड़ा पुल भी देखने को मिल जाता है। रेलवे लाइन भी लोहे की पटरी से ही निर्मित हुई हैं कुल मिलाकर देखते है तो विज्ञान के विकास में भी इनका योगदान दृष्टिगत होता है। अब इस जाति के लोग विभिन्न तरह के बड़े–बड़े कार्य करने लगे हैं। छोटे–छोटे औजारों से बड़ी–बड़ी मशीनों के निर्माण तक में इनकी भूमिका हैं। यह अलग बात है कि दूसरी जाति के लोग भी अब इस धन्धे में आ रहे हैं।

धातु कारीगरी

गांव या हाट के किसी ठठेरा–मुहल्ला से जब हम गुजरते है तो हर वक्त खट–खट, ठक–ठक की आवाज कानों में सुनाई देती है। कभी–कभी आवाज का अंदाज लयात्मक लगता है। तनिक ठहर कर सोचने तथा अगल–बगल महसूस करने के पश्चात् ज्ञात होता है कि यह बर्तन बनाने और बर्तन पीटने की अवाज है। ठठेरा जाति के लोग हर वक्त पीतल या किसी अन्य धातु का बर्तन बनाते रहते हैं हमारे घर में जरूरत पड़ने वाले पीतल के बर्तनों यथा–थाली, थरिया बारहगुना, बटलोही, कलछुल, छोलनी, गिलास, लोटा, तसला, परात, हांडी आदि का निर्माण वे बखूबी करते हैं। कुछ लोग नए बर्तनों का निर्माण करू है तो कुछ लोग पुराने बर्तनों की मरम्मत भी करते है। पीतल के बर्तन बनाने के लिए सबसे पहले भट्ठी में कच्चे धातु को पिघलाते हैं तथा एक निश्चित ताप के बाद उसे पीट–पीटकर परत तैयार करते हैं। पुनः उसके टुकड़े को लेकर विभिन्न आकारों में विभिन्न तरह के बर्तनों का निर्माण करते हैं। परात या थरिया वगैरह पर कई प्रकार के डिजाइन बनाते है। डिजाइन बनाने के क्रम में काफी सावधानी बरतनी पड़ती है क्योंकि काफी महीन रेखा या धब्बा–धब्बा प्रभाव देकर आकृतियाँ पूर्ण होती हैं। झाल–झांझ का निर्माण भी इनके घर होता है। इसके अलावा पूजा–पाठ में इस्तेमाल होने वाली दीप, थाली, अगरबत्ती स्टैंड आदि भी बनाते हैं। कहीं–कहीं ब्रांज की मूर्तिया भी बनाई जाती हैं। इसकी निर्माण प्रक्रिया भी काफी लम्बी है। पहले मोम की आकृति बनती है, फिर उसका सांचा तैयार होता है। उसके बाद उसमें गरम धातु डालकर ढलाई करते हैं। बर्तन या मूर्ति पर चमक देने के लिए अलग तरह से घिसते हैं। भोजपुरी क्षेत्र के कई गांवों में इस तरह का कार्य होता हैं। यह भी जातीय कला है तथा श्रम साध्य भी है।

मिट्टी कारीगरी

मिट्टी से निर्मित बर्तनों–कृतियों का महत्व ज्यादा है। जन्म से मरने तक की कई रस्मों में मिट्टी–बर्तनों का प्रयोग होता हैं यथा–छठी, शादी–ब्याह, यज्ञ के साथ ही मरणोपरांत घड़े को फोड़ना एवं पीपल के पेड़ में छड़े को लटकाना

यानी दैनिक जीवन में खाने–पीने से लेकर पूजा–पाट, रस्मों–रिवाज या किसी खास आयोजन के समय मिट्टी के बर्तनों का इस्तेमाल होता है। अतः कह सकते हैं कि यह कला हमारे जीवन का एक अंग है। मिट्टी–बर्तन बनाने की परम्परा हमारे यहाँ सदियों पुरानी हैं आग की प्राप्ति के बाद जब से मिट्टी–बर्तनों को पकाया जाने लगा तब से ही खाना बनाने, पानी पीने, सामान रखने के लिए मिट्टी की वस्तुएँ बनने लगीं और अभी तक अनवरत यह प्रक्रिया जारी है। आज भी विभिन्न तरह के मिट्टी बर्तन गाँव–बाजार में मिलेंगे। घड़ा, चुका, ढकना, मटका, दीयरा, दीया, ढकनी के साथ ही मिट्टी की छोटी–बड़ी मूर्तियाँ, पर्व–त्यौहारें से संबंधित देवी–देवताओं की प्रतिमा काफी सहजता के साथ बनाई जाती हैं। हमारे यहाँ मिट्टी के बर्तन या मिट्टी के कार्य करने वाले कारीगर को कुम्हार जाति के नाम से जाना जाता हैं । यह जाति शुरू से ही सर्जक–प्रवृत्ति की रही है। कलात्मक दिमाग के चलते ही देखते–देखते मिट्टी के लौंदे से विभिन्न तरह की आकृतियाँ तैयार हो जाती हैं। उपयोगिता के अनुसार बहुतायत रूप में मिट्टी बर्तन का कार्य यहाँ होता हे। छोटी–छोटी दियरी से लेकर बड़ी–बड़ी आदम आकृतियाँ भी बनाई जाती हैं जो काफी कलात्मक होती हैं।

मिट्टी के बर्तन या मूर्ति बनाने की प्रक्रिया लम्बी होती है। सबसे पहले खेत–बधार से मिट्टी खोद कर लाते हैं। अक्सर जेठ के महीने में जब खेत सूखा रहता है तो वहाँ मिट्टी लाकर घर में संग्रहित कर देते हैं क्योंकि बरसात होने के बाद मिट्टी मिलना मुश्किल हो जाता है। पुनः संग्रहित मिट्टी से आवश्यकता के अनुसार मिट्टी निकाल कर भिगोते हैं और गीला करके कार्य करते हैं। गीली मिट्टी को पैर या हाथ से सानते हैं उसके बाद उसका लोंदा बनाकर चाक पर रखते हैं और डंडों के सहारे चाक चलाकर विभिन्न तरह के बर्तन तैयार करते हैं। किसी–किसी बर्तन को आधा सूखने के बाद किसी चीज से पीटते हैं। सूखने के पश्चात आवां में पकाते हैं। पकाने के पश्चात् किसी–किसी बर्तन को रंगते भी हैं जिससे कलात्मकता बढ़ जाती है।

बांस कारीगरी

शादी–विवाह या लगन के दिनों में कई तरह के सूपा–बेनी और डाल–दउरा दिखाई देते हैं। सूपा–बेनी को काफी बारीकी के साथ अत्यधिक कलात्मक बनाने की कोशिश के कारण काफी आकर्षण लगता है। रंग–बिरंगे बांस की पतली–पतली फराठियों से निर्मित सूपा–बेनी का महत्व बहुत ज्यादा है। बहुत ज्यादा इसलिए कि बगैर इसके हमारे इलाके में शादी सम्भव नहीं है। मंडप में इसका होना बहुत जरूरी माना जाता है। इसलिए भोजपुरी गीतों में भी इसके निर्माता–कलाकार की चर्चा अवश्य होती है। शादी की रस्मों में डोम–डोमिन की व्याख्या होती है। इसके अलावा पंखा, खचिया, सूप–सूपली आदि का निर्माण वे करते हैं। सूप का इस्तेमाल छठ पूजा में अरघ देने के लिए भी किया जाता है। अमूमन बांस का कार्य डोम की उप–जाति बांस फोड़ जाती के लोग करते हैं। वे हर वक्त बांस को काटते, फाड़ते, छीलते, नहारते रहते हैं जिससे पतली–पतली फट्टी में घुसाकर वर्गाकार आकृति का निर्माण कर क्रमबद्ध तरीके से गढ़ते जाते हैं। उसके बाद जब जिस वस्तु का निर्माण करना है उसके अनुरूप बुनते चले जाते हैं। कहीं–कहीं बांस के स्वाभाविक रंग के अलावा लाल, पीले, तथा हरे रंगों से उसे रंगते भी है।

आभूषण कारीगरी

नैसर्गिक सुन्दरता यानी शारीरिक सौष्ठव अपने–आप में पूर्ण होता है। लेकिन उसे अत्यधिक आकर्षक एवं लुभावना बनाने हेतु कृत्रिम संसाधनो का प्रयोग किया जाता है। इस कार्य को सुनार जाति के लोग करते आ रहे हैं । आदिम युग में लोग पत्ता, फूल लकड़ी का टुकड़ा आदि पहनकर अपने सौन्दर्य को आकर्षण बनाते थे। बाद में हड्डी, हाथी–दांत या धातु की तावीज बगैरह भी पहनने लगे। धीरे–धीरे विकास के क्रम में सोना, चांदी, तांबा, रोल्ड गोल्ड, कांसा आदि जैसे धातु से निर्मित गहनों का प्रयोग होने लगा। आज भी औरतों–पुरूषों में आभूषण पहनने का प्रचलन है, यह अलग बात है कि महिलाओं के लिए गहने काफी हैं और पुरूषों के लिए कम लेकिन प्रचलित गहनों में पायल, बिछुआ, चुरीपैजना, सादा तोड़ा , बखुरिया, गजरा, चुड़ामणि,

बुलाकी, कंठी, बाजूबंद, कमरबंद, बिन्दी, अंगूठी, झुमका, मटरमाला, कनफूल, बाली, कुंडल, गुजरी, बेलचुड़ी हार आदि प्रमुख हैं। इनकी बनावट काफी बारीकी के साथ होती है बल्कि बहुत धीरे–धीरे धातु को पीट–पीट कर उसका पतर तैयार का गहनों का निर्माण होता है। गहनों की बनावट में छोटा–छोटा पतला सा डिजाइन बनाया जाता हें हालांकि उसमें कई आकृतियाँ ऐसी उकेरी जाती हैं जिनका खास अर्थ होता है। उन्हें पहनने से शरीर को सकारात्मक ऊर्जा मिलती है। आभूषण बनाने का कार्य सोनार जाति के लोग करते है। यह उनका परम्परागत पेशा है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी आज भी इस पेशे से जुड़े हुए हैं।

इस तरह इस जनपद में कई तरह की जातीय कारीगरी प्रचलित रही है। इसके अलावा चमड़े का कार्य जैसे नाधा, चाबुक, जूता, ढोलक छाने में हरिजन जाति के लोग रहते हैं। फूल गूंथने एवं फूलों से विभिन्न तरह के सजावट का कार्य माली जाति के लोग करते हैं। लोक कारीगरी की शुरूआत जातीय कला के रूप में हुई थी या जातीय पेशा के रूप में इसका निर्वाह होता गया लेकिन आज बाजारीकरण के कारण विभिन्न जातियों के लोग विभिन्न तरह की कारीगरी में लगे हुए हैं। कह सकते है कि भोजपुरी अंचल की कारीगरी या शिल्प–कला भी बहुत महत्वपूर्ण है।

भोजपुरी अंचल के कलाकार

भोजपुरी अंचल की विस्तृत पट्टी में दृश्य कला के अनेक महत्वपूर्ण कलाकार हुए है। जिन्होंने अपनी कला में भोजपुरी संस्कृति के प्रतीकों को अपनी रचना में शामिल कर उन्हें नया सन्दर्भ दिया है। अंचल में रहते हुए या दूसरे प्रदेशों में जाकर काम करते हुए आज भी बड़े पैमाने पर कलाकार दृश्यकला के विभिन्न माध्यमों, जैसे–सेरामिक, मूर्तिकला, छापाकला, तथा चित्रकला को विकसित कर रहे है। यहाँ हम कुछ विशेष कलाकारों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे जिनके कामों में भोजपुरी संस्कृति के उपादान नये सन्दर्भों के सामने आते हैं।

अजित दूबे

भोजपुरी अंचल के छापा कलाकार हैं इनके कामों में भोजपुरी जीवन के मिथकों अक्सर स्पष्ट दिखाई देते हैं। इनकी कृतियाँ भोजपुरी जीवन में व्यक्त

लोक–कथाओं और प्रतीको से निर्मित होती है। जिनमें स्त्री, पुरूष, साँप, बिच्छू, तितली, बच्चे और परिवार शामिल हैं। इनके यहाँ रंगो की अपेक्षा रेखाएँ अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। रूप को वे अन्य छापा कलाकारों की तरह महत्व देते हैं और एचिंग यानी अम्लांकन में लोक में प्रचलित प्रतीकों को नये रूपों में रखकर उसे समकालीन अर्थ देने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। वे कहते हैं कि जब भी वे काम करते है। हमारी मिथकीय परम्परा, मिथकीय चरित्र अपने आदिम पवित्रता के साथ गुंजित होने लगते हैं।

शांभवी

इस अंचल की एक अन्य महत्वपूर्ण चित्रकार हैं। उनकी चित्रकला की महत्वपूर्ण विशेषता अपनी स्मृतियों को दृश्यात्मक अभिव्यक्ति देना है। शांभवी की कृतियों मे भोजपुरी जन–जीवन की जीवन्त वस्तुएँ, बचपन के खेल, हंसिया, हल, नाव, घड़ा आदि आकार पाती हैं और इन्हें वे गहरे अर्थों में अभिव्यक्त कर हमें चकित कर देती हैं। 'लाल अँगीठी वाली स्त्री','हँसिया' और 'ढ़िबरी' वाली उनकी श्रृंखलाएँ भोजपुरी अंचल को नये अर्थ संदर्भों से जोड़ देती हैं। धूसर रंगों में कैनवस पर व्यंजित होते उनके काम मूर्त और अमूर्त की सीमाएँ भी तोड़ते हैं जो बेहद महत्वपूर्ण है।

श्रीकान्त पाण्डेय

इस अंचल के महत्वपूर्ण मूर्तिकार हैं। इनकी बनाई 'सांड' श्रृंखला चर्चित रही है। इन्होंने पत्थरों के साथ–साथ क्ले में भी अनेक महत्वपूर्ण कृतियों का सृजन किया है। मनुष्य के जन्म से लेकर मरण तक के जीवन–चक्र पर उनकी श्रृंखला बेहद चर्चित रही हैं। इसके साथ–साथ भोजपुर अंचल के इतिहास और कथाओं पर भी इनकी कृतियाँ बहुत सराही गई हैं। अपने मूर्तिशिल्पों में कभी मूर्त तथा कभी अर्मूत रूपों की अभिव्यक्ति करने वाली इस मूर्तिकार ने देवी–देवताओं की छबियों में भी नया अर्थ भरा है तो 'चाणक्य' पर बनाई अपनी मूर्ति से ख्याति पाई है।

अमरेश कुमार

अमरेश कुमार भोजपुर अंचल के मूर्तिकारों में सर्वाधिक प्रयोगशील हैं। इनकी कृतियों में भोजपुरी अंचल के प्रतीकों का तथा लोककलाओं का गहरा प्रभाव है। इनके अधिकार काम टेराकोटा तथा प्रस्तर शिल्प में हैं। 'खड़ाऊ', 'शंख', 'लोटा' जैसे सांस्कृतिक प्रतीकों पर भी अमरेश ने मूर्तिशिल्प बनाये तथा इन पर संस्थापन भी बनाया। अमरेश लोक में प्रचलित उपादानों में नया अर्थ भरते हैं और मानवी सभ्यता के उत्सव को भी खोजने का काम करते हैं। इनके बनाये शबीह भी अपनी कलात्मक के कारण सहज ही हमें आकर्षित कर लेते हैं। प्रकृति में विचरना और जीवन के विविध रंगो को लोक में विन्यस्त करना उनका महत्वपूर्ण अवदान है। यही कारण है कि मूर्तिकार होने के बावजूद वे प्रयोग पर ज्यादा ध्यान देते हैं। कभी टेराकोटा, कभी पत्थर, कभी लकड़ी पर काम करते अमरेश संस्थापन भी करते है तो मल्टीमीडिया तकनीक में भी हाथ आजमाते हैं। पर सबमें वे भोजपुरी अंचल के प्रतिनिधि कलाकार के रूप में सामने आते हैं।

भुनेश्वर भास्कर

भुनेश्वर भास्कर भोजपुरी अंचल के एक अन्य प्रतिभाशाली कलाकार हैं जिनके चित्रों में हम भोजपुरी संस्कृति और संघर्ष की छबियों को देखते हैं। भोजपुरी की लोक परम्परा से लेकर वहाँ के लोगों की आकांक्षाओं और संघर्षों को भी भास्कर ने अभिव्यक्त किया है। उनकी गिरमिटिया मजदूरों पर चित्रित 'विस्थापन' श्रृंखला बहुत चर्चित रही है। इसके अतिरिक्त 'शमियाना', 'परम्परा से सम्पर्क' जैसी श्रृंखलाएँ भास्कर को महत्वपूर्ण कलाकार बनाती है। ये धूसर रंगो में छबियों को उकेरकर उनमें जो रंगारंग लय उभारते हैं, उससे उनकी गहरी लयात्मकता का पता चलता है। घड़, काठ की गाड़ियाँ, झण्डे, हाथी सवार, ताल का कमल, मोर तथा भोजपुरी अंचल के जीवन्त उपादानों को अंकित करते भास्कर आज बहुत–से कलाकारों को दिशा दे रहे हैं।

अभिजित पाठक

भोजपुरी अंचल के प्रभावशील अमूर्त चित्रकार हैं। अभिजित की कृतियों में लुप्त और प्रकट होती रेखाओं में आसानी से भोजपुरी लोक शैलियों की रेखाओं के दर्शन होते हैं। इनके अमूर्त चित्रों में प्रकृति के साथ जीवन की विविध छबियाँ दिखती हैं और एक गहरा दर्शन प्रकट होता है।

संक्षेप में, इन भोजपुरी कलाकारों में हम उन सैकड़ो कलाकारों की छबियों को देख सकते हैं जो आज दृश्य में उपस्थिति हैं। यह वे प्रतिनिधि कलाकार हैं जिनके नक्शे कदम पर बहुत–से कलाकार लगातार काम कर रहे हैं। इनकी सबसे बड़ी खासियत अपनी मिट्टी में होना है, अपनी संस्कृति के राग सुनना है और अपनी स्थानीय पहचान के साथ जुड़कर जीना है।

Hkkt ijh lLdfr e dtjh ,o ukjh 'kfDr

भरत सिंह भारती

भारतीय संस्कृति इतनी समृद्ध है की अन्य देशो से अलग है। मानव जीवन की समस्त पहलुओं के चिंतन के साथ ही इसका प्रादुर्भाव होता है। प्रत्येक प्राणी का खान–पान, रहन–सहन, भेष–भूसा, आचार–विचार, तौर–तरीका तथा चाल–चलन इसका उद्‌गम स्थान है। यह संस्कृति हमारे विरासत में पीढ़ी दरपीढ़ी अनवरत चलते रहने के साथ ही प्राप्त है। जिस भाषा के साथ संस्कृति का सम्बन्ध होता है, उसे अपने अंक में लेकर, अंतस्तल में सुरक्षित कर उसके साथ ताल मेल बिठा लेती है। प्रत्येक देश की संस्कृति एक दूसरे से भिन्न है।

संस्कृति संस्कारों का संघ है, समूह है। संस्कारो से ही यह निर्मित है। संस्कार बनते भी है, बिगड़ते भी है। संस्कार एक ऐसी विधा है जो मनुष्य के तमाम अच्छाइयों, सद्‌गुणों, सद्‌व्यवहारों, सद्‌विचारो एवं उसी के समकक्ष कार्यों पर आधारित है। संस्कार अच्छे भी है तथा बुरे भी। हमारे मनीषियों एवं सद्‌ग्रंथो की भी ऐसी मान्यता है कि पूर्व जन्म के संचित संस्कार अगले जन्म में प्राप्त होता है। मानव जीवन का सारा कार्य संस्कार में ही समाहित है। जन्म काल से लेकर अंत काल तक संस्कार से ओत–प्रोत है। यहाँ तक की लोकगीत भी इससे अछूता नहीं रहा, और इसे अपने में समाहित कर लिया। जब संतानोत्पत्ति होती है (लड़की हो या लड़का) तो जन्मकाल से ही संस्कारो की कड़ी से जुड़ाव हो जाता है। इस कड़ी का पहला संस्कार गीत है सोहर। नारी कंठ से सोहर जब सुरीली आवाज में थिरकती हुई प्रस्फुटित होती है तो मनोहर छवि दृष्टिगोचर होने लगता है। इसके पश्चात् संस्कारो की झड़ी लग जाती है यथा–नेव छावर गीत, झूमर,खिलौना गीत, बधाइयाँ आदि। ऐसे

अवसर पर तो कही–कही पंवरिया गीत भी श्रवनेन्द्रियों को आनंद देने से मुंह नहीं मोड़ते। साथ ही काजर पराई, अन्नप्राशन संस्कार आदि।

संस्कारिक गीतों के तहत मौसमी गीत भी बड़ी सुहावनी सौंदर्य लेकर उपस्थित होती है। मौसमी गीतों में–होली गीत, फगुवा, चइती, चइता, चइतार आदि। वर्षा ऋतु के आगमन के साथ बरसाती गीत, कजरी, झूला अपनी रंग बिखेरती है। वर्षा ऋतु के गीतों में कजरी का सर्वश्रेष्ठ स्थान हैं। इसे कजरी या कजली दोनों नाम से जानते है, तथा दोनों नाम प्रचलित है वैसे तो कजरी पुरूष वर्ग भी गाते है, लेकिन विशेष रूप से स्त्रियां तथा लड़कियां झुला झूलने के वक्त या ऐसे भी सावन के महीने में, पर्व त्यौहारा में दतचिते होकर बड़े ही चाव से गाती हैं। यह सभी भाषाओं में विभिन्न क्षेत्रे में अलग अलग ढंग से गाया जाता है। उत्तर प्रदेश और बिहार की कजरी अपने में विशिष्ट स्थान रखता है। कुछ ऐसी भी मान्यता है कि उत्तर प्रदेश में माँ विन्ध्यावासिनी देवी को मनोभाव में रखकर कजरी की गायकी होती है।

कजरी की उद्‌गम स्थान कहाँ है, बताना मुश्किल है, फिर भी सावन में ही इसकी प्रधानता है। बनारस और मिर्जापुर की कजरी का एक अलग पहचान है। देवी देवताओं के अलावा वैष्णव जन इसे भगवान विष्णु के अवतार के रूप में राम और कृष्ण को जोड़कर गाते है। कजरी एक विधा है, इसके अलावा कजरी नाम का त्यौहार भी मनाया जाता है। यह त्यौहार भोजपुरी क्षेत्र एवं बुन्देल खंड में साधारण हेर–फेर के साथ मनाते है। सावनी पूर्णिमा को कजरी पूर्णिमा के नाम से जाना जाता हैं। यह त्यौहार जेष्ठ माह के रविवार से प्रारम्भ होकर भाद्रपद के बावन द्‌वादशी तक चलता है। ऐसे अवसर पर बनारस और मिर्जापुर में दुगोला कजरी का आयोजन होता है। कुछ स्थानों में ऐसी भी प्रचलन है कि सावन की अंजोरिया, तिथि नवमी को अपने घर में बहार से शुद्ध मिट्‌टी लाकर, घर को पोतकर, उस शुद्ध मिट्‌टी को घर के एक कोने में पवित्रता पूर्वक रखकर, यव की बीज डालकर, नव दिन रखकर, जब वह जई का रूप धारण कर लेता है तो उस श्रावणी त्योहार की खुशियाँ मानते हुए ताथे पर सिरोधार्य करती है। तत्पश्चात् युवतियां आशीर्वाद ग्रहण करती है।

कजरी गीतन में अधिकतर चंचलता तथा प्रेम भरी कहानी मिलती है। विरह वर्णन, ननद भौजाई का छेड़–छोड़ तथा पति पत्नि की नोक झोक मिलता है। यथा–एक पत्नी अपने पति से आग्रह करती है कि वह अपने बाबा के घर यानि मैके जाना चाहती है। पति से नइहर जाने की गुजारिश करती है। पति कहता है–देवी। नदी में बाढ़ आयी है पानी नदी के दोनों किनारों में लबालब भर गया है। कैसे तुम नदी पार करोगी? जबकि उस पार ले जाने वाली नौका एवं मल्लाह नहीं है। पत्नी कहती है, मैं सरकंडा का बीड़ी बनाकर नौका बना लुंगी और नदी पार कर जाऊंगी। मुझे मैके जाने की इजाजत दीजिये। जबसे आप मेरे मांग में सिंदूर डालकर अपने घर लाये है तब से मैं बाबा के घर नहीं जा पाई हूँ। उसी दिन से मेरा मैके परदेश हो गया है। इस तरह की बहुत सारे मार्मिक भावों से कजरी गौरवान्वित है।

देश भक्ति के क्षेत्र में बहुत सारे कजरी गीत व्याप्त हैं। भारत के आजादी के आन्दोलन में ऐसे कजरी गीतों का सूत्रपात हुआ है जिससे देशवासियों का मनोबल ऊचाईयों को छूता है। देश की आजादी के लिए हिम्मत और हौसला की ताकत मिली है। आजादी के लिए ऐसे गीतों की प्रस्तुति से बहुत मदद मिली है।

एक महिला की मनोभावना है– अगर मुझे पुत्र पैदा होता तो देश को आजाद करने के लिए आजादी का पाठ पढ़ाती, नेता बनता, हाथ में लहराता हुआ तिरंगा झंडा देकर विश्व विजय की तालीम देता। पूज्य श्री बापू जी का ''विदेशी वस्त्र हटाने के लिए'' चरखा चलाने का मंत्र देती आदि वह उस कजरी के माध्यम से पूरा करता।

सृष्टि के संचालन में स्त्रियों की महान बुनियादी भूमिका है। चूँकि स्त्री–पुरूष ही जगत की रचना करने के लिए महत्वपूर्ण अवयव है। इसके बिना इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। शिक्षा के आभाव में स्त्रियाँ पीछे रह गई। अंग्रेजी हुकुमत ने देश में शिक्षा को पिछली पायदान पर धकेल दिया। उसे मालूम था कि अगर शिक्षा का विकास देश में होगा तो हमारी हुकूमत

खतरे में पड़ जायेगी। ब्रिटिश शासक ही देन है कि महिलाएं शिक्षा में पिछड़ेपन का शिकार बनी। ज्ञातव्य है कि किसी रथ के दो चक्के (स्त्री–पुरूष) एक साथ बराबरी में चलना बंद कर दे तो रथ का गतिमान होना असंभव है। लेकिन आजादी के बाद स्त्रियाँ शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ी है। फिर भी जितना अधिकार उन्हें मिलना चाहिए अभी भी नहीं मिल पाया है। किन्तु स्त्रियाँ जब तक पुरूषो के कंधे से कन्धा मिलाकर नहीं चलेंगी, देश का विकास संभव नहीं हैं प्रत्येक क्षेत्र में नारी शक्ति की आवश्यकता है। नारी जगदम्बा है, नारी सीता सावित्री, राधा, रूक्मिनी है। नारी लक्ष्मी है तो नारी रणचंडी भी है। गायन के क्षेत्र में नारी कंठ की सुरीली आवाज अवश्य ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। कोकिला की तरह मीठा स्वर नारी कंठ से ही प्राप्त है। नारी शक्ति की आभाव में सभी तरह के कार्य अधुरा रह जायेगा। नारी शक्ति को कम आकना पुरूषों की बुद्धिमता की नादानी है।

Hkkt ijh lLdfr e dtjh ,o ukjh 'kfDr

मनोरंजन ओझा

कजरी गायन की शुरूआत ही माता शक्ति यानी माता पार्वती से प्रारंभ होती है। बिहार की भोजपुरी संस्कृति में ऐसी मान्यता है कि माता पार्वती ने भगवान शिव को पति के रूप में पाने के लिये बारह वर्षों तक कठिन तप और व्रत कियां तदुपरांत भगवान ने उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भाद्रपद शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को दर्शन दिए। इस तृतीया तिथि को हरितालिका तीज व्रत के नाम से बिहार में जाना जाता है। भगवान शंकर के दर्शन के उपरांत माँ पार्वती अपने सखियों के साथ झूला झूलती हैं और गीत गाती हैं। माता पार्वती के कंठ से प्रस्फुटित ये गीत ही कजरी के नाम से जाने गए।

संस्कृति में हस्तांतरणशीलता होती है अतः कजरी गायन का भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरण होता रहा कालांतराल में विभिन्न विषयों एवं घटनोओं पर कजरी गीत बनते रहे और आज तक यह सिलसिला जारी है।

कजरी गायान में गार्हस्थ्य–जीवन के विविध पक्षों की झाँकियों के साथ सामयिक विषयों का भी उल्लेख रहता है जिसमें नारी शक्ति को प्रबलता के साथ दर्शाया गया है।

मूलतः कजरी का वर्ण्य विषय प्रेम है। इन गीतों में पति–पत्नी के पारस्परिक आचरण व्यवहार का उल्लेख रहता है। एक ओर जहाँ कजरी में संयोग एवं वियोग श्रृंगार के वर्णन मिलते हैं जिनमें नारी के कोमल भावनाओं का वर्णन रहता है वही दूसरी ओर सामाजिक कुरीतियों बाल–विवाह, बेमेल विवाह, पुरूषों का जुआ खेलने से रोकना, देशभक्ति आदि वर्णित कजरी गीतों में

नारी–शक्ति प्रबल रूप से दिखाई देती है। संयोग पक्ष में एक कजरी में नायिका अपने पति से ताजा मेंहदी तोड़कर मंगाने और छोटी ननद से पिसवा देने का आग्रह करती है–

हमका सावन में मेंहदी मँगा द बलम्।
हाली बगीचा में जाय, लाव टटका तोराय
छोटकी ननदी से कहि के पिसा द बलम्।

कजरी गीतों में संयोग श्रृंगार

ननद-भौजाई का संबंध

कजरी गीतों में ननद– भौजाई के संबंध का बखूबी वर्णन हुआ है। एक गीत में ननद अपनी भौजाई के साथ में झूला–झूलने का कहती है। भौजाई कहती है कि हे ननद! आपके भइया आवें या न आवें पर मैं भी झूला अवश्य झूलूँगी। झूला के गीत में मेरे मनमीत की सूरत हमेशा बसी रहती है। उसकी याद जैसे मुस्कुराती रहती है। पटना नगर की यह रेशम की रसरी है (रस्सी) है। चंदन की पीढ़ी पर झूला लगा है। बहार झूम रही है। बादल भी देखो मलार गा रहा है। आकाश से रस की बूँदें चू रही है। ऐसे में झूला–झूलने मैं अवश्य जाऊँगी।

गीत– ***अमवाँ के डरिया पड़ लागल हिंडोलवा.....***67

एक कजरी गीत में एक स्त्री अपने पति से अपनी अक्षतयौवना ननद की शिकायत करते हुए कहती है आप मेरी बात तनिक भी नहीं मानते। ननद जब सोलह श्रृंगार कर के घर से निकलती है तो लोग इसे अजीब नजरों से घूरते हैं। लोग इसके पीछे लग जाते हैं। अतः शुभ दिन देखकर इसका गौना करा दीजिए।

गीत–***माने कहना न तनिक हमार पिया, बहिनी तोहार पिया ना.....***65

पिता-पुत्री का संबंध

एक कजरी गीत में स्त्री, जिसका विवाह तो बालपन में हो चुका है परन्तु

गौना नहीं हुआ है। अब वह बड़ी हो गई हैं उसकी सभी सखियाँ ससुराल चली गई है, पर उसकी उम्र नैहर में ही बीत रही है। सावन के सुहाने मौसम में मोर की

बोली उसके हृदय में टीस उठाती है।
हरि-हरि बाबा के सगरवा मोरवा बोले ऐ हरि।
मोरवा के बोलिया सुनी, बिहरे करेजवा रामा
हरि-हरि करि द बाबा हमरो गवनवाँ ए हरि।
अबके सवनवाँ बेटी खेली ल कजरिया रामा
हरि-हरि आगे अगहन करबो गनवाँ ऐ हरि।

कजरी गीतों में संयोग श्रृंगार

भोजपुरी की मिठास जगत प्रसिद्ध हैं झूला के साथ गाए जाने के कारण कजरी गीत बड़े ही कर्णमधुर हो जाते हैं। एक गीत में नायिका अपने प्रियतम के साथ सुन्दर झूले पर कजरी बाते हुए झूल रही है। रंगरेज से अनुरोध करती है कि साड़ी को गुलाबी रंग में रंग दो परन्तु दोनों किनारों को रंगना मत भूलना।

रंग दे गुलाबी मोरी साड़ी रंगरेजवा.....3

एक कजरी गीत में वर्णन है कि सावन में नायिका अपनी ससुराल में ही पिया के साथ बरसात की राज गुजारना चाहती है इसलिए वह भाई के साथ नैहर जाने के लिए तैयार नहीं है। इस क्रम में वह भाई को सोने की थाली में भोजन, सोने की सुराही में गंगाजल, लौंग–इलाइची युक्त पान का बीड़ा आदि परोसती है तथा सोने के लिये हजारों फूलों से सुसज्जित सेज देती है। इन सब चीजों का उपभोग भाई करें न करें उसे परवाह नहीं, परन्तु वह भाई के साथ मायके नहीं जाएगी।

गीत– ***मोरा भइया अइहें अनवइया हो, सवनवों में ना जइबो नन दो ***8

कजरी में नायिका की सुन्दरता का वर्णन-

कजरी गीतों में लौंग–इलाइची, पान का उपमान पतला तथा सुकुमारपन के लिए फूल का उपमान कोमल और सुन्दर नारी के लिए देनी आम बात है।

गोरी के नयनों का काजल बड़ा जुल्मी है। वह जब सोलहों श्रृंगार कर के चलती है और अपनी तिरछी नजरों से लोगों को निहारती है तो उसके नयन कटार की तरह तेज होकर लोगों पर आघात करते है। उसके अंग इस प्रकार लचकते है जैसे लवंग की डाल लचकती है। तुम पतली हो पान की तरह और कुमार हो फूलों की तरह इसलिए भौंरे भी मंडरा कर जुल्म करते है।

गीत–***हो गोरी जुलुमी तोने नयन के कजरवा ना।.....***11

एक गीत में वर्णन है कि पिया से मिलने के लिए जाती हुई मंद–मंद मुस्काती अभिसारिका नायिका मिलन–यामिनी का स्वागत कर रही है। नायिका का मुख चांद की चाँदनी सा चमक रहा है। वह रास्ते में बलखाती हुई अपने प्रियतम से मिलने जा रही है। बरसात रिमझिम बरस कर जुल्म कर रहा है और इधर सेज पर चढ़ते ही पायल बज उठती है। मेघ की रसभरी फुहार के बीच प्रियतम का आलिंगन मोतियों के हार को बिखेर देता है। इस भाव को बड़ी कलात्मकता के साथ व्यक्त किया गया है।

गीत– ***हरि-हरि आइल समय बरसात मिलन के रात ए हरि। .....*** 13

एक कजरी गीत में बालू भरी जमीन (मरूभूमि) पर बंगला बनाने की कल्पना बहुत मनोरम है। नायिका कहती है कि बालू रेती पर बंगला छवाउँगी। परन्तु इसमें खिड़की छोटी है, में झाँकूगी कैसे। बढ़ई ने पलंग छोटा बना दिया, मैं सोऊँगी कैसे? सोनार को बुलाऊँगी क्योंकि उसने झुलनी छोटी बना दी है। मैं इसी बालू रेती पर माली को बुलाऊँगी क्योंकि उसने गजरा छोटा बना दिया।

गीत– ***हरि-हरि परि गए बालू रेत, चलब हम कइसे ऐ हरि।.....*** 25

एक कजरी गीत में बारह वर्षों के उपरान्त नारी की अपने प्रियतम से भेंट होने का वर्णन किया गया है। नायिका कहती है कि आज मेरे प्रियतम का आगमन हो रहा है। हे मेघ! तुम आज मत बरसो। हे हरि, हमने अगर धूप अर्थात चंदन से अपना आंगन लीप दिया है। अपने शरीर में अंग–अंग पर सभी आभूषण सजा लिए हैं। बारह वर्षों के उपरान्त मेरा प्रियतम आ रहा है। मुझे गोरी क प्राण तो प्रियतम के आगमन का समाचार सुनकर ही हर्षित हो रहे हैं। आज हूमें यह तीनों भुवन अर्थात सारा संसार ही हर्षित हो रहे है। आज हमें यह तीनों भुवन अर्थात सारा संसार ही हर्षित–उल्लासित लग रहा है।

गीत– ***हरि-हरि आजु मोरे पिया के अवनवाँ ए हरि।.....***62

पति के साथ नोक-झोंक

एक कजरी गीत में वर्णन है कि चुनरी भींग जाने के कारण ग्राम–वधू धान रोपना नहीं चाहती। तब पिया उसे मोरंग (नेपाल का पूर्वी भाग) देश से नई चुनरी लाने का प्रलोभन देता है तब वह खुश हो जाती है.....43

सावन के सुहाने एक कजरी गीत की नायिका अपने अलगरजी प्रियतम से कहती है कि ऐसे समय में जब बिजली चमक रही थी, बादल गरज रहे थे और बदली मानों मेरे आंगन में झूल रही थी, तब तुमने रात कहाँ बिताई। बन हरे–भरे हैं, खेतो में धान हरे हैं तथा हरे सावन में हरा सुगना बोल रहा है। पर तुम कहाँ थे? ऐसे सुहावन सावन में झूले पर मेरे कंगन खनक रहे थे, परन्तु तुमने रात कहाँ बिताई, नायिका को उत्तर देते हुए नायक कहता है कि मैं तो कजरी के आयोजन में कजरी सुनने गया था, पर तेरे कंगन की खनक की अनुभूति कर ही तुम्हारे साथ झूला–झूलने आया हूँ।

गीत– ***मोर अलगरजी हो बलमुआँ रतिया कहाँ गँववला ना।.....***20

वियोग श्रृंगार

वर्षा के आते ही नारियों के मन में मनसिज जाग उठते हैं। ऐसा लगता है जैसे काम कला और रस की इस वर्षा ऋतु ने कामरूपी गुरू से दीक्षा ले ली

है। मंद–मंद पवन विरहाग्नि को बढ़ावा दे रहे हैं। यह सावन सब के लिए सुखद है परन्तु बिरहिनियों के लिए दुःखद है।

प्रियतम के बिना सावन में झूला का मजा कैसे आ सकता है। मेघ के द्वारा विरहिनी नायिका अपने पिया के पास संदेश भेज रही है। बिरह की अवस्था में बरसात की एक रात में एक पल भी एक वर्ष के समान मालूम पड़ता है। जरूरत पड़ने पर विरहिनी नायिका, जोगिन बनकर वन–वन प्रियतम को खोजेगी।

सावन तो शोक को मिटाता है लेकिन विरही जनों के शोक को और बढ़ा देता है। वर्षा ऋतु में प्रोषित पतिका नायिका जिसके पति विदेस गए हुए है उसकी मनोदशा के अनुसार वर्षा ऋतु के जीव–जन्तुओं मेढ़क का टर्र–टर्र करना, दादुर मोर, पपीहे का पी–पी करना, झिंगुर के शोर, मेघ का गरजना, शीतल मंद सुगंध पवन का बहना, नदियों नालों का एक दूसरे से मिलना इत्यादि सभी आनन्दित हैं। प्रीत की बांसुरी बज रही है। परन्तु ऐसे समय में पिया घर पर नहीं है। इसलिए नायिका का जिया तड़प रहा है राह देखते–देखते भोर हो गई। पर आँखें अभी भी पिया की बाट जोह रही हैं। बिरहिनी नायिका अधीर हो रही है। साज–श्रृंगार सुख के सारे साधन फीके मालूम पड़ते है और उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है। वह अपना दुख किससे कहे।

वियोगिनी नारी अपने मन में विसूर रही है कि न जाने उसने कौन सा अपराध किया है कि प्रियतम ने उसे अपनी नजरों से अलग कर दिया है। अन्य युवतियों को पिया के साथ देखकर नायिका का मन भी नैहर में नहीं लगता। प्रोषित पतिका नायिका की विरह ज्वाला और भी बढ़ जाती है। कामदेव के पुष्प वाण विरह की अवस्था में

भयानक रूप से दुखदायी होते हैं। वर्षा बूंदो के पड़ने से अंगों का जलना, विरहिनी नायिका का पलास के फूल को जलते हुए अंगार के समान देखने

जैसा हैं वियोग की अवस्था में सभी सुखादायक उपादान दुखदायी प्रतीत होते हैं।

गीत– ***कइली में कवन कसूर हो नयनवाँ से दूर कइल बलम्।.....***21

कजरी गीतों में नारी की राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति

डॉ. शांति जैन (पटना, बिहार) अपनी पुस्तक 'लोक साहित्य में राष्ट्रीय चेतना' में वर्णन करती हैं कि बाबू कुंवर सिंह की प्रेयसी धरमन अपने वीर पति के वीरगति प्राप्त करने से पूर्व ही सती हो गई। उसकी देशभक्त पति के प्रति यह समर्पण भावना एक कजरी गीत में मुखर हुई–

सबक त नैया जाले कलकतवा
हरि-हरि धरमन नैया जाले सुरधमवाँ ए हरि।
सबके चिता लहके गोइठा लकड़िया रामा
हरि-हरि कुंवर चिता धधके चननवाँ ए हरि।

आजादी के लिए संघर्ष के दिनों में एक क्रांतिकारी को कालपानी की सजा हो गई अपने भाई के लिए रोती हुई बहन ने एक कजरी गीत में अपनी व्यथा पिरोई है–

अरे रामा नागर नैया जाला कालापनियाँ ए हरि। सबके त नैया जाला कासी ओ बिसेसर रामा अरे रामा नागर नैया जाएला कालापनियाँ ए हरि।

निहुरी-निहुरी हाकिन बाँचे ले कागदवा रामा
अरे रामा बड़े साहेब भेजे काला पनियाँ ए हरि।

राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ में त्याग और बलिदान में स्त्रियाँ कभी किसी से कम नहीं रही। सावन–भादो के महीने जब बरसात के कारण घर से निकलना मुश्किील हो जाता है, तब देशभक्त स्त्री इस समय का उपयोग चरखा कातकर करना चाहती है। गाँधी जी का आदेश मानकर वह स्वयं तो चरखा कातती ही

है, अपनी सखियों से भी चरखा चलवाती हैं वह घर में ही चरखा स्कूल खोलकर सबको चरखा चलाना सिखाती है। इस तरह स्वराज पाने का स्वप्न वह साकार करना चाहती है–

सावन भदउआ बरसतिया के दिनवाँ रामा
हरि-हरि बैठिके चरखवा घरवा कातबि ए हरि।
अपने त कतबो औरू सखिया से कतईबो रामा
हरि-हरि गाँधी के हुकुमवाँ हम मानबि ए हरि।
अपने नगरिया हम त करबो सुराजवा रामा
हरि-हरि देसवा में अलख जगाइब ए हरि।

देश की खातिर प्राणों की बाजी लगाने में स्त्रियाँ किसी से कम नहीं रही हैं। एक कजरी गीत में एक स्त्री कहती है कि अगर मेरे पति देश सेवा का ब्रत लेने को जोगी हो जाऐंगे तो मैं भी जोगन हो जाऊँगी।

मैं देश की नींद सोऊँगी और जागूँगी तथा अपने शरीर में भभूत रमाउँगी। जहाँ–जहाँ मेरे जोगी प्रियतम जाएंगे, वहाँ–वहाँ मैं झोली लेकर डोलूँगी। देश प्रेम के लिए मैं अपने शरीर को बज्र बना लूँगी और भूख–प्यास पर विजय प्राप्त कर लूँगी। घर–घर जाकर मैं लोगों में देश प्रेम का जज्बा पैदा करूँगी ओर इस तरह अपना जीवन सफल करूँगी–

हरि-हरि देसवा खातिर देबों परनवाँ ए हरि।
जौं पिया बनिहें रामा, देसवा लागी जोगिया रामा
हरि-हरि हम हूँ बनि जइबो तब जोगिनियाँ ए हरि।
भूखिया पियसिया रामा, तनिको ना लगिहें रामा
हरि-हरि बजर बनाइब, आपन देहिया ए हरि।

स्त्रियों का आभूषण प्रेम कहीं–कहीं उन्हें कमजोर बनाता है, किन्तु जब उनके पति देश की विपदा मिटाने के लिये सीमा पर जाने को तैयार होते है तो

पत्नी भी कमर में कटार बाँधकर लक्ष्मीबाई के पद–चिन्हों पर चलने को प्रस्तुत हो जाती है। एक गीत में ऐसा ही भाव है–

बनवा द गरे के हार, सजनवों बरखा आई,
गोरी अब ना कर मनुहार, देस प बिपत बदरिया छाई।
साजन तुम चलो रनभूम, हम हूँ चलब बान्ह कटार
बैरी के सिखाइब, सब जग देखी आँख पसार।

कई कजरी गीतों में सामाजिक कुरीतियों, बाल–विवाह तथा बेमेल विवाह का भी वर्णन मिलता है जिनका विरोध नारियों ने किया है।

हरि-हरि जनि फुसिलाव, दे द बुन्दा बाला ए हरि।
अस्सी बरिस के तूँ त, जैसे परबाबा रामा
हरि-हरि बारह बरिस के अबहीं हम बाला ए हरि।

Hkkt ijh xhrk e NUn foe'k

स्व. प्रो.(डॉ.) शांति जैन

संपूर्ण सृष्टि लय के अधीन हैं साहित्य जगत में यह लय छन्द के समकक्ष है। छन्द से तात्पर्य है गति और यति युक्त लय के साथ चलने वाली रचना। सूर्य और चन्द्र की गति एक लय में चलती है। उनकी गति की यति में सूई की नोंक के बराबर भी व्यवधान नहीं आता। ये दोनों ज्योतिदेव एक लय में, एक गति से चलते है। हम जो नदियों की और झरनों की कलकल सुनते हैं, वह भी लय में होती है। दिन और रात का कालचक्र एक लय में चलता है। छन्द और लय का यह संस्कार हमें प्रकृति से ही मिला है। फिर गीत तो वह तत्व है जो गेय है, संगीत का प्रधान रूप है।

वैदिक युग में मंत्रो और ऋचाओं में भी हमें लय मिलती है। सामवेद तो साक्षात् संगीत शास्त्र ही है। इनमें हमें उदा, अनुदात्त और स्वरित स्वरों के रूप में लयबद्ध ऋचाएँ मिली। बाद में वैदिक काल के स्वरों का क्रम लौकिक साहित्य या संगीत जगत् में सात स्वरों के रूप में आया। संगीत की परिभाषा करते हुए शास्त्रें में कहा गया–

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं-त्रयं संगीतमुच्यते।

यानी गीत, वाद्य और नृत्य तीनों को संगीत कहा जाता है किन्तु इन तीनों में निश्चत रूप से गीत का प्राधान्य है क्योंकि वह दृष्टि के बिना भी लोगों तक पहुँचता है और उन्हें मुग्ध करता है। गीत वह है जो गाया जाता है और जो छन्दों में बँधा होता है।

शिष्ट साहित्य का एक छन्द शास्त्र है, जिसके अनुसार गीत वर्ण और मात्राओं के अनुसार विविध छन्दों में लिखे जाते है। गीत के इन छन्दो का एक निश्चित व्याकरण होता है, जिसके अनुसार गीतों की रचना होती है। इन गीतों में प्राय– दो प्रकार के छन्द होते है–वर्णिक और मात्रिक। वर्णिक छन्दों में वर्णों की गिनती के अनुसार छन्द तय होते है। और मात्रिक छन्दों में मात्राओं की गिनती के अनुसार। संस्कृत या हिन्दी में छन्दों के लिये एक सूत्र कहा गया है–'यमा ता राज मानस लगम्'

इस सूत्र के अनुसार श्लोकों में यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण, और सगण ये आठ गण होते है। जिनमें लघु और गुरू मात्राओं के अनुसार गणों की परिभाषा तय होती है। शिष्ट साहित्य व्याकरण और शास्त्र के अनुसार ही चलता है, लेकिन लोक इस नियम पर नहीं चलता यह सत्य है कि कोई भी गति बिना समगति, समलय और समयति के नहीं होती किन्तु लोकगीत शास्त्र और व्याकरण के नियमों में नहीं बंधते। जैसे हवाओं की गति और बूंदो की छमछम को परिभाषित नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार लोकगीत छन्द और लय में बंधे होने बावजूद व्याकरण और शास्त्र की सीमा में नहीं बंधते।

लोकगीत हर प्रदेश के अलग–अलग होते हैं। इनमें भाषा बोली का वैविध्य भले ही हो, आत्मा इनकी एक ही होती है। वही संवेदना, वही करूणा, वही उल्लास, वही रोमांस, वही हँसी ठिठोली, वही भक्ति और वही वात्सल्य हर प्रदेश के लोकगीतों में मिलता है। यहाँ हम केवल भोजपुरी गीतों में छन्द विमर्श पर चर्चा करेंगे।

प्रत्येक स्थान के लोक गीतों में वहाँ के संस्कार और संस्कृति दिखाई पड़ती है। जंगल के फूल की तरह ये स्वतंत्र वातावरण में ही पनपते है। इसलिये इनमें भाव, भाषा, अलंकार छन्द सभी में स्वतंत्रता का भाव दिखाई पड़ता है। भोजपुरी गीत छन्दयुक्त तो होते हैं, किन्तु छन्द शास्त्र के नियमों में, जगण,

मगण के बन्धन में वे नहीं पड़ते। इनकी रचना तो स्वान्तः सुखाय होती है। यही कारण है कि भोजपुरी लोकगीतों में छन्द विधान व्यवस्थित रूप से नहीं पाया जाता। छन्द विमर्श का यहाँ कोई नियम दिखाई नही पड़ता।

पं. रामनरेश त्रिपाठी ने कहा था कि लोकगीतों में छन्द नहीं केवल लय है। डा. ग्रियर्सन ने बिरहा का छन्द विधान बतलाते हुए लिखा था कि पढ़ते समय छन्द के नियम के अनुसार बिरहा शायद ही मिले, जब तक हम याद न रखें कि बहुत से दीर्घ स्वर पढ़ते समय लघु कर लिये जायें। इनमें कभी कुछ ऐसे व्यर्थ के शब्द होते है जो छन्द के अंग नहीं होते। डॉ. ग्रियर्सन ने यह भी कहा था कि इन लोकगीतों की यह विशेषता है कि पिंगल शास्त्र के नियम इनमें बड़े शिथिल हैं। इन विद्वानों के विचारों से यह स्पष्ट होता है कि लोकगीतों में छन्दों का विशेष ध्यान नहीं रखा गया है बल्कि जहाँ छन्द हैं भी, वहाँ भी नियमों के पालन में शिथिलता बरती गई है।

लोकगीतों में कुछ ऐसे छन्द मिलते हैं जो वर्णिक या मात्रिक किसी छन्द की कोटि में नहीं आते। ये केवल लय पर आश्रित होते है। इसलिये पारिभाषिक शब्दावली में ये तोड़ कहलाते है।

भोजपुरी लोकगीतों में छन्दविधान की चर्चा के क्रम में हमें उसके प्रकारों पर भी एक नजर डालनी होगी। सबसे पहले हम बात करें। संस्कार गीतों के अन्तर्गत सोहर की। ये प्रायः सात मात्र के होते हैं और इसकी पंक्तियाँ लम्बी होती हैं। ये मंगलगीत पुत्रजन्म के अवसर पर गाये जाते हैं। इन्हे सोहल छन्द में बंधा हुआ कहा जाता है। इसी कारण इनका नाम सोहर पड़ा। भोजपुरी सोहर में तुक नही होता, पिंगल शास्त्र का नियम भी नहीं होता किन्तु लय अवश्य होती है। वैसे तुलसीदास ने रामलला नह छू में जो सोहर लिखे हैं, उनमें तुक भी है और प्रत्येक पंक्ति में बराबर मात्राएँ भी। उन्होंने पिंगल शास्त्र के अनुसार शुद्ध रूप में सोहर छन्द लिखा है।

बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो
विहँसत आज लोहारिनि हाथ बरायन हो।

बिरहा एक जातिगान है, जो अहीरों द्वारा गाया जाता है। इसमें चार चरण होते है। पहले और तीसरे चरण में सोलह अक्षर होते है तथा दूसरे और चौथे चरण में दस अक्षर। पहले और तीसरे चरण के अन्तिम दो अक्षर लघु और गुरू होते हैं जबकि दूसरे और चौथे चरण में गुरू और लघु। एक उदाहरण इस प्रकार है–

पिया पिया कहत पियर भइली देहिया
लोगवा कहेला पिंडरोग
गउँवा के लोगवा त भरभियो ना जानेला
भइले गवनवा ना मोर।

यहाँ पहली और तीसरी पंक्ति में सोलह अक्षर और दूसरी तथा चौथी पंक्ति में दस अक्षर हैं। पहली और तीसरी पंक्ति के अन्तिम दो अक्षर लघु और गुरू हैं जबकि दूसरी और चौथी पंक्ति के अन्तिम अक्षर क्रमशः गुरू एवं लघु है। यहाँ छन्द विधान सार्थक है किन्तु बिरहों में ऐसा नहीं पाया जाता है। जैसे–

रसवा के भेजली भँवरवा के संगिया
रसवा ले अइले हा थोर
अतना ही रसवा में केकरा के बँटवों
सागरी नगरी हित मोर।

इसमें पहली और तीसरी पंक्ति में पंद्रह अक्षर हैं। किसी बिरहा की किसी पंक्ति में अठारह अक्षर भी मिलते हैं जो नियम के अनुकूल नहीं हैं।

संस्कृत साहित्य में भावव्यंजना के अनुसार छन्दों का प्रयोग किया गया है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक में कहा है कि विभिन्न विषयों के वर्णन के लिये भिन्न भिन्न छन्द होते हैं। जैसे प्रवास के वर्जन के लिये मन्दाक्रान्ता छन्द का

प्रयोग होता है। कालिदास के मेघदूत में एकमात्र मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग किया गया है। क्षेमेन्द्र के अनुसार वस्तु वर्णन और नीतिकथा में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग होता है। वाल्मीकि रामायण के छन्द इसके प्रमाण हैं किसी वस्तु के प्रचंड रूपक वर्णन में स्नगधरा जैसे लम्बे छन्दों का प्रयोग होता है।

किन्तु लोकगीतों में भावव्यंजना के अनुरूप समुचित छन्दों का प्रयोग अनिवार्य नहीं होता। वैसे कहीं कहीं भावव्यंजना और छन्दविधान का सामंजस्य देखने को मिलता है। लोकगीतों में आनन्द उल्लास की अभिव्यक्ति के लिये झूमर गीत होते हैं, जिनकी पंक्तियाँ प्रायः छोटी होती है, लय बड़ी द्रुत और सरस होती हैं। प्रेम और आनन्द के इस गीत में झूमर छन्द का प्रयोग होता है–

कच्ची कली बनि जाऊँ बलम
सुगना बनके आना जी

मार्मिक और गंभीर भावों की अभिव्यक्ति के लिये लम्बे छन्दों की आवश्यकता होती है, इसलिये विप्रलंभ श्रृंगार का वर्जन प्रायः जँतसार में होता है। जँतसार में करूण रस पाया जाता है इसलिए ये लोकगीतों में सबसे लम्बे गीत होते है। जैसे–

ए राम जेहि वन सिंकियो ना डोलेला
बधवो ना गुरजेला ए राम
ए राम ताहि वने हरि मोरे गइले
त केहु ना सनेहिया नु ए राम।

जँतसार का यह गीत बहुत लम्बा है। इसकी लय मन्दाक्रान्ता की तरह विलंभित हैं। इसलिये विरह वर्णन में जँतसार छन्द बड़ा अनुकूल है।

जिन गीतों में वीरता और साहस का वर्णन होता है, वहाँ आल्हा छन्द का प्रयोग होता है। इस तरह के गीतों में महाप्राण अक्षरों का अधिक प्रयोग हेता है। इस गीत की लय बड़ी तेज होती है। गाने का स्वर इतना ऊँचा और ओजपूर्ण होता

है कि वीर रस स्वतः मूर्तिमान हो उठता है–

अकिले लाखन की उपटिन में
कोई कुँवर न आड़ो पाँव
भगे सिपाही दिल्ली वाले
अपने डारि डारि हथियार।

संस्कृत साहित्य में हास्य रस की सृष्टि के लिये दोघक छन्द का प्रयोग होता है। इसकी लय या शबद हास्य उत्पन्न करने वाले होते हैं। भोजपुरी के हास्य प्रधान गीतों में 'गोंड़ऊ' छन्द का प्रयोग होता है। गोंड जाति का काम सेवकाई करना पानी भरना आदि है। विवाह के अवसर पर हास परिहास का दौर प्रायः चलता है। गोंड जाति के लोग इस अवसर पर जो गीत गाते हैं, उन्हें गोंड़ऊ गीत कहते हैं। इन गीतों में हास्यप्रधान होता है। इसके शब्द चलते हुए और लय द्रुत होती होती है। एक गीत देखें–

हलबल हलबल धुनिया धूने
सूत काते हलुआई
फुफुती तरके झुलनी झूले
बुटवीथ के कामाई
खुर खुर टाटी बोले, हम जानीं पियवामोर
पियवा का मेसे मेसे अइले कंगना ले गइले चोर।

छन्द प्रधान गीतों में लय के साथ तुक काम भी महत्व होता है। संस्कृत और अंग्रेजी में प्रायः तुकान्त कविताएँ नहीं होती किन्तु प्राचीन हिन्दी कवियों से आधुनिक कवियों तक ने तुकान्त कविताएँ लिखी है। तुक के प्रयोग से कविता का सौन्दर्य और माधुर्य बढ़ता है। भोजपुरी लोकगीत भी तुकान्त होते है किन्तु इस नियम को अनिवार्य नहीं माना जाता। पद के अन्त में कहीं स्वरों की समानता होती है तो कहीं व्यंजन की। कहीं प्रत्येक पंक्ति में तुक मिलता है,

कहीं दो पंक्तियों को छोड़कर। एक गीत में प्रत्येक पंक्ति के अन्त में 'के' शब्द का प्रयोग हुआ है–

लिखियो नामेजेला सनेसवा हो अपना साम सुनर के
ना जाने कवने करनवा हो हमरा के तजि के
आधी रात बोलेला पपीहरा हो हमरा के बेधि के।

विरहा गीतों में कभी कभी दूसरी और चौथी पंक्ति में तुक होता है–

पिसना के परिकल मुसरिया तुसरिया
दुधवा के परिकल बिलार
आपन आपन जो बना सम्हरि है बिटुइया
रहरी में लागल बा हुँडार।

एक बहुरा गीत की प्रत्येक दो पंक्ति में तुक है–

बेहु ना बेटी हो डाल भरि सोनवा
से आपन कन्हैया देहु ना बिसराई।
आगि लगइबो बाबा डाल भरि सोनवा
से आपन कन्हैया बिसेर जोग नाई।

लोकगीतों में प्रायः रे ना, हो, साँवरिया, ननदी, हो रामा आदि पद पंक्ति के अन्त में आते है। जो तुक का काम करते है–

घेरि घेरि आवे घनकरिया
अरे साँवरिया
रिमझिम रिमझिम बरसे बदरवा
दादुर करहइ गोहरिया
अरे साँवरिया

तुक की योजना बारहमासा और बिरहा में विशेष रूप से पाई जाती है।

प्रथम मास असाढ़ सुन्दर बूँद से झरि लागही
साम अइसन निठुर ए सखी मास असाढ़ न आव हीं

जब गीतों में लय के साथ भावों का सामंजस्य होता है तो वह सहज ही आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। लोकगीतों की पंक्तियाँ कहों छोटी कहीं बड़ी होती हैं। स्त्रियाँ कुछ निरर्थक पद हे राम, हो रामा आदि लगाकर उसे पूर कर लेती हैं। यही कारण है कि भोजपुरी गीत में छन्द और लय का अस्तित्व तो है, पर बन्धन नहीं है।

लोकगीत पिंगल शास्त्र के बन्धन में नहीं बँधते। इनमें कुछ शब्दों को लघु न होते हुए भी लघु रूप में और गुरू न होते हुए भी गुरू रूप में गाने की लय को समान रखने के लिये प्रयुक्त कर लिया जाता है–

उड़ल उड़ल सुगा गइले कलकतवा
कि जाइके बइठे ना, मोर सामीजी के पगिया
कि जाइके बइठे ना
पगरी उतारि सामी जाँघ बइठवले
कि कह मुगा ना मोरे घर के कुसलतिया
से कह सुगा ना।

इस गीत में 'उड़ल' शब्द लघुस्वर में रहने पर भी दीर्घ उच्चरित होता है। 'कह' शब्द भी लघु होते हुए दीर्घ उच्चरित होता है। पगिया का 'प' कुसलतिया में कु और ल का उच्चारण दीर्घ होता है।

सामगायन में वर्ण स्तोभ, पद स्तोभ, और वाक्य स्तोभ का प्रयोग होता रहा है। ये पदों की गेयता के अनुसार जोड़े जाते थे।

लोकगीत गाने की पद्धति में भी इन तीन स्तोभो के अलावा मात्र स्तोभ का प्रयोग किया जाता है। ये गीत की सुविधा और छन्द लय से परिपूर्ण बनाने के लिये जोड़े जाते हैं। चारों स्तोभो के उदाहरण इस प्रकार हैं–

मात्र स्तोभ– **मचिया बइठली ए सासु सुनहु वचनिया**
राउर बेटा मोरंग चलले कवना राम अवगुनिया।

यहाँ कवन 'शब्द में आ' जोड़कर कवना कहा गया है।

वर्ण स्तोभ- भोजपुरी में गीत को गेय या छन्दोबद्ध बनाने के लिये शब्दों के अन्त में 'इया' या 'या' जोड़ देते हैं। इसे वर्ण स्तोम कहते हैं–

घरवा रोवे घरनी ए लोमिया
बाहारावा राम हरिनिया
दाहावा रोवे चाका चकइया
बिछोहवा कइले निनरवामोहिया।

इस गीत में हरिनिया, चकइया, निरवामोहिया में 'इया' प्रत्यय जोड़ा गया है। निवामोहिया में 'वा' शब्द जुड़ा है, यह निर्मोही का रूपान्तर है।

पदस्तोभ– चैता और जँतसार के गीतों में पद स्तोभ के रूप में आहो रामा, और हो रामा आदि पद जोड़े जाते हैं–

ए राम हरि मोर गइले बिदेसवा
त दुइ नवरंगिया लगवल हो राम
ए रामा हरिजी के लावल नवरंगिया
त नवरंग झुरा गइले हो राम
यहाँ 'हो राम' पद जोड़ा गया है।

वाक्य स्तोभ- लोकगीतों में कहीं कहीं छन्दविधान की सार्थकता के लिये एक पूरा वाक्यांश जोड़ दिया जाता है–

बाट में चलत बटोहिया भइया हितवा
कि आहो मोरे रामा, हमरो सनेसवा लेलेजइह ए राम

इसमें कि आहो मोरे रामा यह पूरा वाक्यांश प्रयुक्त हुआ है। स्पष्ट है कि छन्द योजना को सफल बनाने के लिये भोजपुरी गीतों में स्तोभ प्रणाली का प्रयोग होता है। संगीत शास्त्र की दृष्टि से इन लोकगीतों का बड़ा महत्व है।

यद्यपि इनमें संगीत का सही सही व्याकरण नहीं होता किन्तु इन्हें संगीत शास्त्र से पृथक भी नहीं माना जा सकता। इन गीतों में शास्त्रीय संगीत के कहरवा, दादरा, खेमटा और जतताल का प्रयोग होता है। जतताल चौदह मात्रा का है और खेमटा छः मात्रा का। कहरवा कुछ गीतों में चार मात्रा का और कुछ में आठ मात्राओं का प्रयोग में आता है। शास्त्रीय संगीत के चार थाट बिलाबल, खमाल, काफी और भैरवा का लोकगीतों में विशेष प्रयोग होता है। होली के गीतों में प्रायः काफी थाट का तो चैती में खमाज थाट का विशेष प्रयोग होता है। भैरव थाट का प्रयोग एक पूर्वी गीत में हुआ है–

समकात देल भोला अनघन सोनवा
बनवारी हो हमरा के लरिका भतार
लरिका भतार लेके सुतली अंगवना
बनवारी हो जरि गइले एड़ी से कपार।

पराती गीतों पर बिलाबल थाट का प्रभाव है। यद्यपि इनमें शुद्ध राग का स्वरूप नहीं है फिर भी बहुत से स्वर, ताल, थाट, राग और छन्द इनमें पाये जाते हैं।

भोजपुरी निर्गुण में कबीरदास, धर्मदास, लक्ष्मी सखी आदि का उल्लेख किया जा सकता है किन्तु इनमें प्रायः स्तोभ प्रणाली प्रयुक्त करने की आवश्यकता नहीं होती। छन्द की दृष्टि से भी ये प्रायः दोषहीन होते हैं। कबीर का एक पद है।

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो
चन्दन काइ के बनल खटोलना
वापर दुलहिन सूतल हो।

कबीर के शिष्य धर्मदास का एक पद इस प्रकार है–

भितऊ मड़इया सूनी कर गैलो
अपन बलम परदेस निकरि गैलो
हमरा के कछुवो ना गुन देइ गैलो।

लक्ष्मी सखी के शब्दों में–

मने मने करीले गुनावनि हो पिया परम कठोर,
पाहनो पसीजि पसीजि के हो बहि चलत हिलोर।

स्पष्ट है कि लोकगीतों का वैविध्य निर्विवाद है। इनमें रस, भाव, छन्द, अलंकार, आदि एक से एक सौन्दर्य के साथ प्रकट होते है। इनमें छन्दों की मर्यादा भी है और स्वतंत्रता भी। सारांशतः कहा जा सकता है कि भोजपुरी गीतों में छन्दविधान की अपनी परम्परा है जो शिष्ट साहित्य धारा से मेल नहीं खाती फिर भी इसमें प्रयुक्त छन्द और लय के सौन्दर्य को नकारा नहीं जा सकता।

fHk[kkjh Bkdqj % Hkkstiqjh dk vuxx[~] gjh

अवधेश प्रधान

भिखारी ठाकुर (1887-1971) भोजपुरी जनपद के सबसे लोकप्रिय कलाकार रहें है। राहुल जी ने उन्हें 'अनगढ़ हीरा' कहा तो मनोरंजन प्रसाद सिन्हा ने भोजपुरी का शेक्सपियर। उनकी नाच मंडली का प्रदर्शन देखने गांव–देश के दूर–दूर से हजारों लोग आते और रात–रात भर बिना किसी सुरक्षा प्रबंध के जमीन पर बैठकर कला का आनंद लेते। वे अपने जीवन काल में ही एक किंवदन्ती पुरूष बन गये थे। उनका जन्म छपरा जिले के कुतुबपुर गांव के एक नाई परिवार में हुआ था। उनकी विशेष शिक्षा–दीक्षा तो नही हुई थी लेकिन कबीर की तरह केवल सत्संग और अपनी लगन के बूते रामायण, महाभारत और पौराणिक कथाओं का गाने–बजाने का, बहुत सी धुनों और छंदो का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वे थोड़ी बहुत कैथी और देवनागिरी लिपि में लिखना जानते थे–लेकिन उनमें सीखने की जन्मजात रूचि थी। जजमानी में हजामत बनाने, शादी –ब्याह में न्यौता पहुंचाने से लेकर तमाम अनुष्ठानों में अपना कर्त्तव्य निभाने के साथ–साथ घर की गायें चराते हुए, खुले मैदान में अपने अन्य चरावाहा साथियों के साथ रामलीला की नकल करते–करते उनकी कला की कलियां खिलना शुरू हुईं। कुछ कमाने–धमाने की गरज से वे कुछ दिन खड़गपुर (पं. बंगाल) में रहें। वहां रामलीला के साथ–साथ 'जात्र' और बँगला संस्कृति के अनेक पहलुओं को देखकर उनके मन में रंगमंच की प्रेरणा जागी। गाँव लौट कर उन्होंने पहले तो रामलीला का ही डौल जमाया, फिर जल्दी से अपनी रचनाओं को लेकर अपनी मंडली बनाकर जनता के बीच जाने का सिलसिला शुरू किया। – बिजपुर में करि के रामलीला, नाच के तब बन्ह ली

सिलसिला।'' धीरे–धीरे ''नाच'' ही उनका मुख्य पेशा हो गया। हजामत बनाने का काम छूट गया– ''छूए छूटल नाच का अर से।'' हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि केदारनाथ सिंह ने इसे छूए के ऊपर नाच की पर हिंसा के ऊपर कला की जीत के साथ में महसूस किया है। भिखारी का जन्म धरती की गोद में हुआ था, उनकी कला भी उसी से पैदा हुई थी। विषय–वस्तु, भाषा, मंच सज्जा, अभिनेता, दर्शक, कहानी, संवाद, मुहावरे, गानों की धुन, गाने और नाचने वाले–सब कुछ आए छपरा से। जीवन भर उन्होंने अपनी जन्म भूमि की लीला रची, गाई और की। उन्हें अपनी अंचल के एक–एक स्थान से अनुराग है। सोनपुर के पास राजा मोरध्वज थे, उन्होंने छह वीरों को पराजित कर दिया इसीलिए 'छपरा' नाम पड़ा। दोन–दरौली द्रोणाचार्य का स्थान है। जिन्हें बिना जोते बीज गिरह देने भर से 'करमी की लहर बढ़ती है तो छपरा की महिमा बढ़ती जाती है। छपरा की तरह 'हिन्दुस्तान' की उत्पत्ति भी भिखारी ठाकुर की अपनी है। हिं का मतलब है हम रियाँ (यहां) के रहने वाले है, दु का मतलब है– हम दूर तक रहते हैं। स का मतलब है सगरो (सब जगह) और तान का मतलब है हमने शमयाने की तरह तान दिया है। राजधानी दिल्ली का संबंध, लगता है दिलीप से है। संस्कृत पंडितों से अलग उत्पत्ति का यह देसी तरीका भी धरती का, लोक जीवन की उपज है।

वे अपने –अपने जनपद के अनेक स्थानों का संबंध पौराणिक सीखों और कथाओं से जोड़ते हैं–भरपुरा में जड़भरत रहने में तो श्रृंगीहरिया में श्रृंगीऋषि। कुम्हना कुंभज ऋषि का स्थान है, तो गोदना गौतम ऋषि का। हनुमान जी की माता अंजनी द्वारा छपरा की रहने वाली थी। दहियावां दधीचि का स्थान है, उनकी हड्डी से वह प्रसिद्ध धनुष बना जिसको तोड़ने पर रामजी का ब्याह सीता से हुआ। जहाँ गज–ग्राह का संघर्ष हुआ वहीं सोनपुर का मेला लगता है। भिखारी ठाकुर के मन में एक भोजपुरिया लोकदर्शी विज्ञान भी है जो इस मेले में जेब कतरों पर भी नजर रखता है– ओहू में चठाका बा से गेढ़िए काटेला... कोई 'झदेला' ओहू पान खाकर हंसता घूमता हे और जहाँ सुई–डोरा– कंघी–

ऐनक बिकता है, सौदा देखने के बहाने अंचल बचा कर जेब में रख लेता है।

भिखारी की पढ़ाई –लिखाई अक्षर ज्ञान तक सीमित थी (रामायाण बांच लेते थे और अपनी रचनाएं लिख लेते थे।) लेकिन सत्संग से उन्होंने पर्याप्त ज्ञान अर्जित किया था। इसी के बल पर वे अपने नाटकों में सुत्रधार या वार्तिक बनकर उतरते थे। और नाटक की कहानी या पात्रों में निहित भाव की व्याख्या करते थे। अवतारों की व्याख्या वे मनुष्य के क्रमिक विकास की अवस्थाओं के रूप में करते थे। पहले उन्होंने 'मछ कछ ब्राह तीन औतार....' आदि में यह बात छंदो में प्रस्तुत की, फिर वार्तिक के रूप भोजपुरी गांव में समझाया–नारायण इमनी का नर हुई जा। नारायण नव अवतार.... इमनियों के नव अवतार हुई जा, जिस प्रकार नारायण के नौ अवतार हैं, उसी प्रकार नर के भी। मत्स्य अवतार जल से हुआ, मनुष्य भी जिस रज–वीर्य से पैदा हुआ वह जल ही है। मछली लंबी होती है, मानव शरीर की रचना भी माता के पेट में लंबी होती है। जब इस शरीर में हाथ–पैर आ जाते है तब मानों कच्छप अवतार होता है। जब उसमें 'जीव'(प्राण) पड़ जाता है तो मानों वरह अवतार हो जाता है। जब गर्भ नौ महीने का हो जाता है तब वही नृसिंह अवतार होता है। जैसे नृसिंह खंभी फाड़ कर प्रकट हुए थे उसी प्रकार नर माँ का पेट फाड़ कर निकलता है। बाहर निकलने पर उसे 'बच्चा' (भोजपुरी में 'बाचा') कहते है। 'बा' का मतलब है कि 'बावन' (वामन) अवतार हो गया और 'चा' का मतलब चाइना हो गई। कोई भी चीज शिशु मुंह में डाल लेता हैं। जब एक–एक कदम चलने लगा तब परशुराम अवतार हो गया। मां का बाल पकड़कर खींचता है, उसे लात–मुक्के से मारता हैं। बोहत सयाना हो गया तो राम का अवतार हो गया, तरह तरह के खेल खेलने लगा। विवाह हुआ तो कृष्ण अवतार हो गया, रासलीला में बहुत व्यस्त रहने लगा। जब वृद्ध हो गया तब बुद्ध अवतार हो गया। इसी प्रकार उन्होंने 'छिति जला पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम सरीरा' की भी व्याख्या की–धरती का स्थान है पेट, जला का स्थान है मुंह, अग्नि का स्थान है आँख, आकाश का स्थान है कान और पवन का स्थान है नाक। इसी प्रकार उदाहरण

देकर वह बताते हैं कि जो बाहर है, वही भीतर है। उनके भीतर दार्शनिक वार्तिक की भूमिका में लोकाचार पर जो सवाल उठाते है उसकी भाषा कबीर से मेल खाती है–आखिर धोती पहनकर देह पर गमछा रखकर, जनेऊ पहनकर, कुर्ता उतार कर करो भोजन क्यों किया जाता है, जिस धोती से मलद्वार और मूत्रभिय ढकी जाती है वह पवित्र मानी जाती है, जिस गमछी में नेका–थूक लिपटा रहता है वह भी पवित्र हुई, तो कुर्ते में क्या सेंध है जो उसे भोजन करते समय उतार दिया जाता है। सूत का कुर्ता है, सूत की धोती है, सेत से ही कुर्ते की सिलाई होती हे। इनकी एक ही जात है फिर भी कुर्ता पहन कर भोजन करने में शर्म आती है। वही सूत जनेऊ कहलाता है। ऊंची जाति के ग्रहण करने से उसकी पदवी बढ़ जाती है– जात से पदवी बड़का पावत। भिखारी को यह बात समझ में नहीं आती।

जब भिखारी ठाकुर बहुत प्रसिद्ध हो गए तो कई लोगों ने उनकी रचनाएं हूबहूं ना कुछ अदल–बदल कर अपने नाम से छपा लीं और उनकी निन्दा भी की। भिखारी ठाकुर ने इसके जवाब में एक रोचक पत्रिका छपवाई–शंका समाधान। आरंभ में वार्तिक ने कहा– मैं अयोध्या के धोबी को प्रणाम करता हूँ जिसकी निन्दा के ही कारण रामायाण में लव–कुश कांड की बढ़ोतरी हुई। इसी प्रकार जिस आदमी ने मेरी शिकायत छपवाई उसी के कारण यह 'शंका समाधान' सामने आया। जो गाँव–नगर के साधु सज्जन, गहृस्थ, पंडित, कवि मुझे आदरपूर्वक बुलाते है। और मेरी कला के लिए भोजन, बिछौना और रूपया–पैसों से मेरा सम्मान करते हैं। वे मेरे गुण के ग्राहक है और जो मेरी शिकायत छपवाकर किताब बेचते है और पैसे कमाते हे वे मेरे अवगुण के ग्राहक हैं। उनका नाम इसलिए नही लिखता हूं क्योंकि वे लोग हमारे बराबर में नही हैं। बीच–बीच में अपने छंद या रामचरित मानस की पंक्ति में उद्वघृत भी करके वार्तिक के इस शंका उठाकर फिर उसका समाधान किया जाता है। भिखारी ठाकुर ने अपनी रचनाओं में स्वयं को 'हजाम' (नाई) कहा है। क्यों? वार्तिक का उत्तर है–''पाचक शक्ति का नाम'' हजम है। तों गांए बिकए,

गोहत्या मुझे मालूम होता हे जो यह तीनों महापाप है। यही महापाप को हजम करने से मैं अपने को कहूं–कहूं पर 'हजाम' लिख दिया हूं। कहीं–कहीं पर 'दास' भी लिखा है क्योंकि नाई गौरी–गणेश का दास होता है। निंदक लोग भिखारी के नाम में ठेकार लगाते हैं। भिखारी के विचार से यह उनकी तामक्षी प्रेम–भक्ति है। उसी तरह से लोग मेरा नाम जानते है। अपनी तुलना काकभुशुंडी से करते हुए वे लिखते है कि मैं काकभुशुंडी जैसा हूं। वे नीलगिरी पर्वत पर रहते थे, मैं स्टेज पर । वे बरगद की छाया के नीचे कथा कहते थे, मैं शामियानें में। उन्हें श्रोता पक्षी है। मेरे जीवित समाजी श्रोता होते हैं। काकभुशुंडी अमर हैं तो कुछ दिन में मेरा नाम भी अमर हो गया। निंदक लोग हिरण्य कश्यप हैं, मुझे प्रहलाद समझ कर दंड दे रहे है, '' अब मुझे आशा है जो मेरा नाई भाई नरसिंह भगवान प्रकट होकर मेरा भ्रम का भार उतारेंगे। भिखारी के कई भाई हैं –श्री कृष्ण चन्द्र,। रावण ने अंगद को डाटते हुए कहा कि – बालि न कबडु गाल आए गए, भिलि तपसिन्दू तैं भरसि लबारा। इस चौपाई को उद्घृत करते हुए भिखारी ने कहा– मैं वही लबार हूं जिसने रावण को खरी–खरी सुनाई थी। भिखारी अपनी यही रचनाओ में स्वयं को 'लबार' कहा है। भोजपुरी मंच पर 'लबार' की बड़ी भूमिका है। जो संस्कृत रंगमंच पर विदूषक की।

भिखारी ठाकुर जिस जमाने में थे, विचार में कई निम्न जातियां अपनी अस्मिता और अभिकार को लेकर जागरूक हो रही थी। भिखारी ठाकुर ने अपनी जाति की दुर्दशा को लेकर 1932 ई. में 'नाई बहार' की रचना की। दोहा– चौपाई में उन्होंने अपनी आंखो देखे अनुभव के आधार पर लिखा– नाई नरक से बढ़कर करता है। सूतिका–गृह में जन्म लेते ही जो सूतक लगता है, वह नौ महीने का पालक नाई उतारता है लेकिन उसे मिलता क्या है? बेटे के जन्म पर चार आना, बेटी के जन्म पर दो आना, बस इतनी सी दक्षिणा पर छूत भाग जाता है। दूसरी ओर जन्म कुण्डली की बनवाई पंडितजी बाइस रूपये वसूलता है। ब्राम्हणों के यही बढ़ते लालच के कारण यजमान और पुरोहित में

झगड़ा होने लगा। मृत्यु के सूतक में नाई सिर के बाल मूंडता हैं। नाखून काटता है। वास्तव में पालक से शुद्धि दिलाता है। जन्म हो, गोहत्या लगी हो, विवाह में –सब में भूमिका प्रमुख होती है। ब्याह में पंडित से अधिक श्रम वह करता है, न्यौता बांटता है, कुम्हार माती–बारी तक दौड़ लगाता है। चौक पूजना, दही–अच्छत– मीठा के साथ गौरी–गणेश की स्थापना रातभर जागकर वर–वधु के सब अनुसरण करवाना उसके जिम्में है। लेकिन मेरी रकम हमेशा पंडित जी वसूलते है और उसे डांट–फटकार के साथ मरन मारन को मजदूरी मिलती है। उससे अच्छे तो बनिहार है–एह से नीमन बाड़न बनिहाए। जन्म, मृत्यु विवाह, जनेऊ, आदि में ब्राम्हण और नाई को कम या देशी देने का विधान कहीं लिखा है? और लिखा भी हो तो क्या वह उचित है? भिखारी ठाकुर की राय है कि श्राद्ध में जैसे गौ, कौआ और कुत्ता का हिस्सा बराबर लगता है उसी प्रकार ब्राम्हण, महापात्र, और नाई का हिस्सा एक बराबर होना चाहिए। नाईयों से उन्होंने कहा जजमनिका छोड़कर बाहर जाओं और आजादी से काम करके पैसा कमाओं।

जजमनिका में कुछ ना बांटे। नग सिलवट -लोढ़ा चाटे।
नगदा जाके कमइइ बाइए। रहे ना दोही अकाल के पइए।।

जिन्होंने सुझाव दिया कि सौर कर्म का घर बनाओं और घाम–वर्षा शीत में घूम–घूम कर जान देने के बजाय भीतर बैठकर हजामत बनाओ। एक ही घर में भाई–भाई पांव से बैठकर करम करो। इसमें खर्चा कम लगेगा और कमाई ज्यादा होगी।

'नाई बहार' में उनकी सामाजिक आलोचना पुरानी सामंती जजमानी घर के बाहर निकाल कर नए जमाने के अनुरूप एक सम्मान जनक व्यवस्था कर रास्ता ढूंढती हैं, लेकिन वह कभी भी सवर्ण बनाम अपर्ण के विवाद में नही पड़ती। 'चौवर्ण पन्द्रवी में उन्होंने चाहे कार्यों की समरसता का बखान किया है। और शरीर के ही भीतर से उसका उदाहरण देकर अपनी बात भोजपुरी में

समझाई–शुद्र पैर सबको ढोता चलता है निः लेकिन सभी प्रणाम करते हुए पांव लगते है, मात्र नहीं लगते और पांव लगने पर मुंह आशीर्वाद देता है, और हाथ सभी क्षत्रिय पीठ ठोकता है, ''गोड़ शुद्र पर गिरला पर मुंह बाबा खखनि के सरधा से आसिरवाद दे लात। छत्री पीठ ठोकलान कि खूब काम कइल अउर हाथे बिडवना करेलन। लेकिन पहिले गोड़े, शुद्र ओपर चढ़ेलन।'' हाथ क्षत्रिय के बिछावे बिछौने पर पैर शुद्र चढ़ता है। ई चारों वर्ण के मिलाप कइसन बा कि पैर धड़रत चलेलाय, हाथ भात चाहहे छुबनो चीझ तइयार करके इंसान के मुंह ब्राम्हण के खिया देत बाड़न। मुंह अपने में मदूरबन राखत, पेट वैश्य के भेज देत बाड़न। पेट अन्न के रस खून बनाके चमके कर्म के इहां पहुंचा देत बाड़न। भिखारी ठाकुर का मन तुलसी के मानस –पाठ से बना था। वे आमतौर पर सामंजस्य बनाकर चलने वाले जीव है। अपनी रचनाओं में मीठा व्यंग भी करते है। लेकिन आमतौर पर उनका स्वभाव तीखी आलोचना करने, झगड़ने और ललकारने वाला नही है?

उनका जो नाटक– जिसे भिखारी ठाकुर 'तमासा' कहते है– सबसे पहले प्रसिद्ध हुआ वह है 'बिदेसिया'। बिदेसी नाम का एक खेतीहार मजदूर अपनी पत्नी प्यारी सुंदरी को घर में अकेली छोड़ कमाने कलकत्ता चला जाता है। वहां उसका प्यार एक दूसरी स्त्री से हो जाता है। दोनों साथ–साथ रहने लगते है। उनके दो बच्चे भी हो जाते है, उधर लम्बे समय तक अपने पति की कोई खबर ना पाकर प्यारी सुंदरी चिंतित हो उठती है और एक अधेड़ बटोही से अपना संदेश भेजती है। बटोही ने कलकत्ता पहुंचकर उसके पति को ढूंढ लिया और उसे उसकी पत्नी का दुखड़ा सुनाकर गांव घर जाने को प्रेरित किया। उसकी सौतिन ने बहुत रोकना चाहा लेकिन बिदेसी किसी तरह उससे छूटकर घर की ओर चल पड़ा। चलते समय गाड़ी वाले ने साहूकार ने और गुण्डों ने बकायेदारी के नाम पर उसके सब रूपये–पैसे छीन लिये। इस बीच पड़ोस के एक मनचले युवक ने प्यारी सुंदरी को फंसाना चाहा लेकिन उसने बड़े दृढ़ता से अपने 'सत' की रक्षा की। बिदेसी अपने घर पहुंचा, तभी कुछ

दिनों बाद उसकी सौतन भी अपने दोनों बच्चों के साथ बिदेसी का घर पूछती–पूछती पहुंच गयी। 'पदमावत्' की रानी नागमती और पद्मिनि की की तरह दोनों प्रेमपूर्वक साथ–साथ रहने लगी।

नाटक के आरंभ में भिखारी ठाकुर ने कहानी के अध्यात्मिक प्रतीकों का संकेत उसी तरह किया है। जिस तरह जायसी ने 'पद्मावत' के अंत में बिदेसी ब्रम्हा, बटोही, धरम रखेलिन माया, प्यारी सुंदरी जीव। ब्रम्ह जीव ढूंनो जाना एही देह में बाड़न बाकी भेंट ना होखे। कारन दे सका एकरा के काटेवाला बटोही धरम। इन चारों पात्रों में पौराणिक चरित्रें की छाया दिखाते हुए उन्होंने कहा– प्यारी सुंदरी राधिका जी जैसी है। बिदेसी श्रीकृष्ण जैसा, रखेलिन कुब्जा जैसी, और बटोही उद्धवत जैसा। लेकिन बिदेसिया की लोकप्रियता का आधार में आध्यात्मिक या पौराणिक संकेत नही है। यह अमूल्य, इसकी कहानी घर–घर की जन–जन की जानी परखी है। संस्कृत में हमारे यहां संदेश भेजने की लम्बी परंपरा रही है। अपभ्रंश में अद्दूमाण (अद्हर्दमाव) का संदेश एकसक प्रसिद्ध है। लोक साहित्य भी अपने परदेसी प्रिय के लिये बिरहणी प्रेयसी की करूण बेदना से ओत–प्रोत हे। भोजपुरी क्षेत्र के पूर्वी अंचल के लोग कमाने कलकत्ता जाते रहे हैं। और पश्चिमी अंचल के लोग बंबई। कई कारणों से कलकत्ता–प्रवास बंबई प्रवास से अधिक पुराना है। अवध क्षेत्र के कवि त्रिलोचन की भंयाकासो दालों अन्दर नहीं चीन्हती, कविता में चंपा बड़े जोर से कहती है कि वह अपने बालम को संग–साथ रखेगी, कलकत्ते कभी न जाने देगी, ''कलकत्ते पर बजर गिरे।''

यह नाटक और भिखारी ठाकुर के अधिकांश नाटक वस्तुतः गीत्रि नाट्य है। गीत और नाच की प्रमुखता होने से ही लोक में उनके नाटक नाच के नाम से प्रसिद्ध हुये। जहां तहां कवि, दोहा, चौपाई आदि छंदों के अलावा लोकप्रिय, लोरी कामन, जॅतसारी, खोरगे, निगुर्ण, विरह, चौबोला, पूर्वी , तेवड़ा, झूमर, आल्हा, पचरा, खेमटा, आदि धुनों में लगभग अस्सी गीतों का गुंफन 'बिदेसिया' का विशेष आकर्षण है। कुछ में रोचक छोटे–छोटे संवाद गद्य में भी है। लेकिन

कई संवाद तो गीतों में भी चलते हैं। लोक नाट्यों की परंपरा में होने के कारण कहानी नई नहीं पर भी यह लोकमानस को गहराई तक स्पर्श करने में सफल हुआ। प्रेम और पैसे का द्वंद इसकी अंतर्वस्तु को ऊंचाई देता है। बिदेसी पैसा कमाने के लिए ये तो अपनी प्रिय पत्नी को छोड़कर कलकत्ता जाता है। वैसे कलकत्ता शहर देखने की ललक भी मन में है लेकिन असली चिन्ता है आर्थिक अभाव दूर करने की। अंततः उसकी सारी कमाई लुट जाती है और खाली हाथ लौटना पड़ता हैं अपनी प्यारी सुंदरी के पास। उसकी रखेलिन का भी गहना–पैसा लुट जाता है, उसे भी अपने बच्चों के साथ शहर छोड़कर बिदेसी के गांव आना पड़ता है। आर्थिक अभाव के बावजूद उन गरीबों को प्रेम और सुकून मिलता है तो अपने गांव, अपने घर में। पैसा और शहर की चमक–धमक सब प्रेम के आगे फीके पड़ जाते है। उसके बिना धनार्जन करके भी आदमी दरिद्र है – कइत 'भिखारी' भिखार होई गइलीं दौलान बहुत दया के। उसकी रखेलिन को भी लगता है कि प्रेम के साथ रहकर मेहनत, मजदूरी करना भी श्रेयस्कर है – लुगरी परिरव सतुआ खाइब निजे मजूरी करके। विवाह और दाम्पत्य जीवन की पवित्रता के प्रति भिखारी ठाकुर की विशेष निष्ठा है। बटोई ने बिदेसी को विवाह संस्कार की महिमा बखानते हुए कहा – ''बबुआ, सिआइ में एगे कलसा धराला। कलसा का नीचे बालू कलसा बिछावत जाता से मालूम होता कि जलवा मयी हवन। तवना पर जब बिछावत जाल। अ कच्छप नारायण इवन। तवना पर मालूम होता कि समुद्र हवन। छीर समुद्र में बिस्नू भगवान रहे लें। यह से ओइ में कसइली डाल बिआइल। बिस्नू भगवान के साथे लछिमी रहे ली। एह से ओह में पड़खा डाल बिआइल। बिस्नू भगवान के नाभी से कमल आग के पत्तो कलसा में, नीचे डंटी के बिहाग। तपना पर चार मूंह वाला दिया धराइत जाता। अ पहला हवन। अपना गवाह के सामने जवना सती के हाथ – बांहि तूं धइलड़ ओह सती के छोड़ देलड, एकरा में आके अधुरा गइल ।'' इसी तरह उनके नाटकों में स्त्री का 'सत' यानी पतिव्रत्य एक लोकमान्य नैतिक मूल्य है। स्त्री के लिए यह विशेष सम्मान का आधार है इसीलिए रखेलिन – जिसको नाटक में रंडी कहा गया है– वह भी अपने को 'उढ़री' (उड़ाई हुई)

नहीं कहलाना चाहती और 'बिदेसी' से दांह गहे की लाज रखने की प्रार्थना करती है – कहे भिखारी राख प्रान प्रति दांह गहे कर ला जा।

भिखारी ठाकुर के जो सामाजिक नाटक अनमेल विवाह, विधवा समस्या और नशेबाज पति को लेकर लिखे गये हैं उनमें जिस नाटक ने भोजपुरी समाज में हलचल मचा दी थी वह है 'बेटी बियोग'। चटक अपनी पत्नी लोभा से राय बात करके अपनी बेटी उपातो की शादी बकलोलापुर गांव के एक बूढ़े धनी आदमी झांकुल से कर देता है। इसके लिए झांकुल ने उसे सोलह सौ रूपये दिए। झांकुल दुलहा के मुंह में दांत नहीं, आँखों से कीचड़ बइती रहती है। ब्याह के कुछ ही दिनों बाद उपातो नाराज होकर मायके आ जाती है तो .... पीछे पीछे उसके दरवाजे पहुंच जाते हैं। तुरंत बिदाई के लिए झगड़ पड़ते है। माता–पिता, पंच सबसे रो–रोकर दुखड़ा सुनाती है। इसके बावजूद उसे फिर उसी बूढ़े वर के साथ बिदा हो जाना पड़ता है। इस नाटक की कहानी तो बिलकुल मामूली है। बेटी का दुखे–भरा बिलाप ही इसकी जान है। चटक–लोभा ने सारा सौदा सबसे छिपाकर किया, इसके बावजूद गांव पड़ोस के लोग जान जाते है। वे सामाजिक बहिष्कार करते हैं, फिर भी रूपये के लोभ में लड़की के माँ–बाप अपनी जिद पर अड़े रहते हैं। पंडित ने शादी करवाई के पैसे तो ऐंठ लिए लेकिन उनके घर का अन्न खाने से मना कर दिया। उसने एक कहानी सुनाई – एक आदमी ने कुत्ते का मांस आदमी की खोपड़ी में भरकर जूते से ढंक दिया। वह अपने चौके में किसी को जाने नहीं देता था। इसका कारण पूछने पर उसने कहा कि जो आदमी लड़की बेचता है उसकी छाया पड़ने से भोजन अशुद्ध हो जाएगा। बिदाई के समय बेटी ने रो–रोकर बताया – पिताजी आपने कैसा बूढ़ा वर खोजा है –

सिकुरल जइसे चाय,सूखल चुसेला आम, मुंहक भटलका लेदरवा हो बाबू जी।
आंख से सुझत कम, इसदम खिंचत दम, सनकुर मथवा के बरवा हो बाबू जी।
मूंहवा में दांत नाहीं, लार चूवे गाला मांही, बवला प भितर समुन्दर हो बाबू जी।
पति कर देखि गति,पागल भई मति, रोइ रोइ करीला बिहालू हो मोर बाबू जी।

आपने यह कैसे ''अधजिव'' दुलहा पसंद किया, इसको घड़ी–घड़ी दस्त होती है, मुंह से हमेशा कफ आता है, मेरा सारा जीवन नरक फेंकते बीतेगा –

घड़ी–घड़ी होत झरी, कफ से भरला नरी, नरक बिगत दिन बीती मोर बाबू जी। किसने ऐसा जादू किया, आपकी मति मारी गई, गरदन काट कर बेटी को गाड़ दिया, मेरा सौदा किया जैसे कोई रूपये गिनवा कर बकरी का पगहा पराये के हाथ में पकड़ा देता है–

रोपेया गिनाइ लिहल, पगहा धराइ दिहल
चेरिया के छेरिया बनवल हो बाबू जी।

माता–पिता और पंचों के आगे उपातो बेटी के ऐसे क्रन्दन भरे आठ गीत एक पर एक चलते रहते है। वह याद करती है– उसने बचपन से ही कितनी सेवा की और अब उस सेवा का ऐसा फल मिला –

साथ क के आँगन-गली के, छीपा-लोटा जुठ मति के
बनि के रहली माई के टहलनी हो बाबू जी।
गोबर-करसी कइला से बिमहा-छुतहा घइला से
कबना करनियां में चुकली हो बाबू जी।
बर खोजे चलि गइल, माल लेके घर में धइला
दादा लेखा खोजल दुलहवा हो बाबू जी।
बुढ़ऊ से सादी भइल सुख तो सुहाग गइल
घर पर हर चल बवलाड हो बाबू जी।

अपने बाप से निहोरा किया कि मेरा यह विलाप सुन कर आगे से अब किसी को बेटी मत बेचने दीजिएगा – रोवत बानी सिर धुनि, ईहे छछनल सुनि, बेटी मति बेचे दीह केहू के हो बाबू जी।

बेटी का यह विलाप और निहोरा सुनकर, कहते हैं कि कई जगह ऐसी शादियों को लोगों ने रोक दिया; जहां बेटी बेचने की प्रथा थी, वहां लोगों ने

बाकायदा पंचायत करके इस प्रथा को समाप्त कर दिया। संजीव ने अपने उपन्यास 'सूत्रधार' में इस नाटक के सामाजिक प्रभाव का यथार्थ और प्रभावशील चित्रण किया है।

भिखारी ठाकुर ने 'बेटी वियोग' के अलावा 'विधवा विलाप', 'भाई विरोध', 'पुत्रवध', गंगा स्नान'' जैसे और भी सामाजिक नाटक लिखे लेकिन ऐसे नाटकों में नाटक कला की ठीक से सबसे महत्वपूर्ण है 'गबर घिचोर'। गलीज नाम का एक आदमी अपनी पत्नी को घर पर छोड़कर कमाने पर देश चला जाता है और लंबे समय तक कोई खोज खबर नहीं लेता। बस बीच गांव के ही एक मनचले चुवक 'गड़बड़ी' से गलत संबंध हो जाने के कारण गलीज बहू को एक हो जाता है। पन्द्रह साल बाद गलीज घर लौटता है और बेटा अपने साथ ले जाना चाहता है। गलीज बहू बेटे को ले जाने से मना करती है। उसका कहना है कि बेटे के साथ मैं भी चलूंगी। गलीज को केवल बेटा चाहिए। इसी बीच बेटे पर गड़बड़ी अपना दावा ठोंकता है। मामला पंचायत में आया। पंच ने गड़बड़ी से पूछा बेटे पर तुम्हारा हक कैसे हुआ? गड़बड़ी ने तर्क दिया– यदि रास्ते किसी का खाली बटुआ मिल जाय, मैं उसमें अपना रूपया–पैसा डाल कर रखने लगूँ और कुछ दिनों बाद वह आदमी अपना बटुआ पहचान जाय तो अपना खाली बटुआ ले जाएगा कि मेरा रूपया–पैसा भी लेता जाएगा? पंच ने फैसला दिया– बेटा गबर घिचोर गड़बड़ी का हुआ। गलीज से पूछा गया तो उसने कहा–यह मेरी पत्नी है इसलिए यह लड़का भी मेरा है। गलीज बहू ने कहा– ये पन्द्रह साल से परदेश में है, मेरा बेटा तेरह बरस का हुआ, वह इनका बेटा कैसे हो सकता है? गलीज ने तर्क दिया– मैंने कुम्हड़े की लतर लगाई, वह अगर बढ़ते–बढ़ते पिछवाड़े में जाकर पड़ोसी के छप्पर पर फल गई तो वह फल मेरा होगा कि पड़ोसी का? पंच ने फैसला दिया, जिसका पौधा उसका कुम्हड़ा। बेटा गबर घिचोर, गलीज का हुआ। गड़बड़ी और गलीज में खींचातानी होने लगी। गलीज बहू ने ऐतराज किया मुझसे कोई पूछ ही नहीं रहा है, पंच ने जब पूछा तो उसने भी तर्क दिया मेरे घर में पांच सेर दूध था।

किसी ने एक धार जोरन (जामन) दे दिया। उससे जो घी निकला, वह मेरा हुआ। पंच को बात समझ में आ गई। फैसला दिया–जिसका दूध, उसका घी। बेटा गलीज बहू का हुआ। बेटा भी मां के साथ रहने को राजी। अब शुरू हुआ न्याय को घूस देकर खरीद लेने का खेल।

गड़बड़ी ने दो सौ रूपया घूस देने की पेशकश की। पंच ने गड़बड़ी का पक्ष लिया। गलीज पांच सौ रूपये का लालच दिया। पंच गलीज की ओर झुके। गलीज बहू ने रो–रोकर अपना दुखड़ा सुनाना शुरू किया– मैंने बेटे को अपने उदर से जन्म दिया है। ताऊ–चमार से बुलाकर पूछ लीजिए। बेटे का मूल मैं हूं। मैंने नौ महीने तक इसे पेट में रखा है। मुझे ठग–बटवारों ने घेर लिया है। लालच में इन्हें मेरी जान की फिक्र नहीं है। हे काली माता मेरा बेटा मुझे दिला दो। वह बेटे को पकड़कर रोती है और बेटा जनमाने का दुखड़ा याद करती है–

बनि के लोहार कुली, लालच में गइलीं भूलि, नव मास ढोवली मोयरिया हो बबुआ। दिन एतहूल आवे, घन ना आंगन भावे, चलत में गोड़ भहिरात रहे हो बबुआ।

जब होखे लागल पीरा, दुखवा समुझ हीरा, मुखबा से कहलानी कमती हो बबुआ। सुन दुलर कहीले से, चार दिन पहिले से, सउरी में दांत लागि जात रहे हो बबुआ। ... अब तब घरी रहे, ईहे सभ को कहे, चमइन हाथ ला के कढलसि हो बबुआ।

नया भइल जनम मोर, असही ह पैदा तोर, तेलबा लगाइ के अबठनी हो बबुआ।

सुनि कर डभइला के, गूह–मूत फइला के, माई मत जान हमें दाई जान हो बबुआ।

इस दुखड़े का यथार्थ तो बस इसे भोगने वाली मां ही जानती है। पंच पर

इसका कोई असर नहीं पड़ता। जो हृदय की सुने वह न्याय कैसा। पंच ने पूरी ईमानदारी से लड़के के तीन बराबर हिस्से काट कर तीनों को बांट देने का फैसला दिया। जल्लाद लड़के को लिटाकर उसके शरीर पर नाप कर चिन्ह लगाता है। गलीज और गड़बड़ी ताकीद करते हैं कि नापने में जरा भी गलती ना हो। जल्लाद कहता है– मैं जितने टुकड़े करूंगा, हर एक पर चल चबन्नी से कम नहीं लूंगा। गलीज और गड़बड़ी तुरंत चार चार आना पैसा दे देते हैं। जब गलीज बहू ये बेटे की कटवाई के चार आना देने को कहा जाता है तब उसका मातृहृदय बोल पड़ता है– 'ना ए बाबू जी, जिअते दूनों जाना में केहू के दे दीं।' जीते–जी इन दोनों में किसी एक को दे दें। गलीज और गड़बड़ी को इस बात की खुशी है कि मां ने अपना दावा वापस ले लिया। वे बोल पड़ते है– तब ऐसा कीजिए, केवल दो हिस्सा कीजिए। पंच ने लक्ष्य किया– इन दोनों को बेटे का काटे जाने का दुःख नहीं है। जिनको अपने बेटे की ममता नहीं है, उनका बेटे पर हक कैसा? बेटे की ममता तो मां को है। वे गलीज बहू को बेटा ले जाने का हुक्म देते हैं।

गलीज अपनी पत्नी को पागल कहता है लेकिन वह इतनी बुद्धिमान और साहसी है कि अपनी अवैध संतान को भी समाज के तमाम लांछन और बंधन की उपेक्षा करते हुये उसको पालती–पोषती और बड़ा करती है और इतना ही नहीं। गलीज गड़बड़ी और पंच के सामने अपने पुत्र पर अपने अधिकार को लेकर डटी रहती है। यह नाटक गलीज बहू के माध्यम से न केवल संतान पर माता के अधिकार की घोषणा करता है बल्कि उस अन्यायपूर्ण व्यवस्था को भी उजागर करता है जो जीवित मनुष्य को एक जड़ वस्तु के स्तर पर ला देती है और आत्मीन से आत्मीन मानव संबंध को निरर्थक कर देती है। इस दृष्टि से देखे तो उसकी तुलना बर्टोल्ट ब्रेस्ट के विश्व प्रसिद्ध नाटक 'खड़िया का घेरा' से ही की जा सकती है। यो दो हास्य और व्यंग्य से भिखारी ठाकुर का कोई नाटक खाली नहीं है। फिर भी करूण व्यंग्य की कला जैसी इसमें निखरी हुई है वैसी किसी और नाटक में नहीं। इसका हास्य और व्यंग्य का ठेठ देसी रंग

भारतेन्दु हरिश्चंद्र के 'अंधेर नगरी' की याद दिलाता है। 'बिदेसिया' का बुजुर्ग बटोही जैसे कुछ का कुछ सुनने के कारण हंसी का पात्र बनता है उसी प्रकार 'गबर घिचोर' का पंच भी कुछ का कुछ सुनता है, कुछ का कुछ समझता है लेकिन वह केवल हंसी ही नहीं पैदा करता इस भोलेपन और मूर्खता के साथ अपने अन्याय पूर्ण फैसलों से न्याय व्यवस्था की अमानवीयता को, उसकी विडंबना को अच्छी तरह उजागर भी करता है।

भिखारी ठाकुर ने जिस प्रकार वृद्ध विवाह और बेटी बेचने की प्रथा पर प्रहार किया था उसी प्रकार नशेबाजी का। 'कलयुग प्रेम' में नशेड़ी (निसइल) शराब के लिए खेती–बाड़ी, गहने, बर्तन बेच देता है। उसकी पत्नी 'दुखहारिन' कहती है– सूई–डोरा घर में ना, लुगरी फाटला बाटे, लड़िका रहत बा उधार पिअऊ निसइल। फटी लुगरी सीने को घर मं सूई–डोरा तक नहीं रह गया है। पत्नी ऐ कान में जो बाला रह गया है उसे भी बेचने पर जोर देता है। जब बेटे ने कुछ समझाया तो उसने नशे की महिमा इस तरह बताई– ''अरे नशा वही चीज है जिसको खाकर देवों में महादेव हुए।'' 'गंगास्नान' में उन्होंने अपने दिआरे की धरती में लहलहाने वाली मकई की महिमा खास नजीर अकबराबादी के अंदाज में गाई–

ए मकई, तोहार गुन गूथन माला।
भात से तरल अब, लावत गरीब लव,
पूरा पूरा पानी दिआला।।
सातू मिरचाई नून, खइला से सूखेला खूनँ।
साधू तोखा रूप बनि जाला।।
भूँजा भर झोरी झोरी, जहां तहां खोरी खोरी।
खात ड़न ताल गोपाला।।
धन ह धनहरा ढाठा, खात लगहर-नाठा।
लेंढ़ा घोनसाली में झोंकाला।।
दारा गूर दही, खान कृष्ण कहि कहि।
मुंहवा में माजा बुझाला।।

किसी भक्त ने मोहन भोग की भी ऐसी महिमा नहीं गाई होगी। इसी रचना में उन्होंने 1933 की बाढ़ का भी यथार्थ चित्रण किया है। यों तो उन्होंने राम और कृष्ण की लीला का भी गान किया है, कई भजन भी लिखे हैं लेकिन उनकी लोकदर्शी प्रतिभा, सामाजिक यथार्थ के प्रसंग में ही विशेष रमती है। उनकी आस्था मेल–मुख्यता मान मर्यादा से युक्त संयुक्त परिवार में थी। लड़के मां की उपेक्षा करें और अपनी पत्नी पर जान छिड़कते रहें, बहुंए, सार–ससुर की उपेक्षा करें यह उनकी दृष्टि में पाप था। नए चाल की सभ्यता में बूढ़ों की दुर्दशा देखकर उन्होंने हिन्दू–मुसलमान सबसे ''बूढ़शाला'' खोलने की गुहार की। वृद्धाश्रम की आवाज उन्होंने तब उठाई जब अभी उसकी कहीं कोई चर्चा न थी। उन्होंने मातृभाषा को घर गुड़ कहा है। स्वयं उनका रचना संचार भी घर का गुड़ ही है– वैसा ही मीठा, गुणकारी और सर्वसुलभ। मिठाइयां आती जाती रहेगी लेकिन घर का गुड़ अपनी जगह कायम रहेगा।

fHk[kkjh Bkdj % ykdft thfo"kk d fu'Ny i rhd

हृषीकेश सुलभ

''और अब यह बहस तो चलती ही रहेगी
कि नाच का आजादी से रिश्ता क्या है
और अपने राष्ट्रगान की लय में वह ऐसा क्या है
जहाँ रात-विरात जाकर टकराती है।
बिदेसिया की लय''

भिखारी ठाकुर बीसवीं शताबदी के सांस्कृति महानायकों में एक थे। उन्होंने अपनी कविताई और खेल–तमाशा से बिहार और पूर्वी उत्तरप्रदेश की जनता तथा बंगाल और असम के हिन्दीभाषी प्रवासियों की सांस्कृतिक भूख को तृप्त किया। वह हमारी लोकजिजीविषा के निश्छल प्रतीक हैं। कलात्मक जिस सूक्ष्मता की माँग करती है, उसका निर्वाह करते हुए उन्होंने जो भी कहा–दिखाया, वह साँच की आँच में तपा हुआ था। उन्होंने अपने गँवई संस्कार, कुल पेट का नरक, पुत्र की कामना, ईश्वर से प्रीति, यश की लालसा आदि किसी बात पर परदा नहीं डाला। उनके रचे हुए का बाह्मजगत आकर्षक और सुगम है ताकि हर कोई प्रवेश कर सके। किन्तु प्रवेश के बाद निकलना बहुत कठिन है। अन्तर्जगत में धूल–धक्कड़ भरी आँधी है। और है–दहला देने वाला आर्तनाद, टीसनेवाल करूण विलाप, छील देनेवाला व्यंग्य तथागहन संकट–काल में मर्म को सहलानेवाला नेह–छोह। उनकी निश्छलता में शक्ति और सर्तकता दोनों विन्यस्त हैं। वह अपने को दीन–हीन कहते रहे पर अपने शब्दों और नाट्य की भंगिमाओं से जख्मों को चीरते रहे। मानवीय प्रपंचों के बीच अपनी राह बनाते हुए आगे निकल जाना और उन प्रपंचो की बखिया

उधेड़ना उनकी अदा थी। तनी हुई रस्सी पर एक कुशल नट के चलने की तरह था यह काम। उनके माथे पर थी लोक की भावसम्पदा की गठरी और ढोल–नगाड़ों की आवाज की जगह कानों में गूँजती थीं धरती से उठती हा हा–ध्वनियाँ। यह अद्‌भूत सन्तुलन था। इसी सन्तुलन से उन्होंने अपने लिए रचनात्मक अनुशासन अर्जित किया और सामन्ती समाज की तमाम धरणाओं को पराजित करते हुए सांस्कृतिक महानायक बने।

रंगमंच का जनतन्त्र

समाज की अन्तिम पंक्ति में खड़े लोगों के बीच जनमे भिखारी ठाकुर को साक्षर बनने के लिए भी संघर्ष करना पड़ा। नाई के जातिगत पेशे से अलग होकर वह अपनी राह बनाना चाहते थे। पर यह सहज–सरल नहीं था। वह अपना गाँव कुतुबपुर छोड़कर पड़ोस के गाँव फतनपुर में बसे। पर वहाँ भी उनका मन नहीं रमा। अपने गाँव लौटे और पत्नी–बच्चों को छोड़कर परदेस चले गए। खड़गपुर, मिदनापुर, जगन्नाथधाम, कलकत्ता में भटकते रहे और जब फिर वापस अपने गाँव लौटे, तो उनके साथ थे परदेस में जीवन–यापन कर रहे पूरबियों के जीवन के भयावह दृश्य। गठरी में थी गोसाईंजी की पुस्तके रामचरितमानस और आँखों में थी रामलीला की छबियाँ। कुतुबपुर में रामलीला का मंचन किया, पर मन को शान्ति नहीं मिली। सिया सुकुमारी के जीवन का दुख विस्तारित होने के लिए हाथ–पाँव मार रहा था। हहास बाँधकर बहती गंगा की आवाज कलेजे में उमड़ती–घुमड़तह रहती। मन निरन्तर आकुल और जिज्ञासु बना रहा। सुख और दुख का भेद तो सब बताने को तैयार थे, पर वह दुख और दुख के बीच का भेद खोज रहे थे। अन्ततः अपने गाँव–घर की स्त्रियों के जीवन के दुखो का छोर पकड़ वह सृजन–यात्रा पर निकले। अपने भीतर अनन्त स्त्रियों के जीवन को धारण किया और अपनी बोली–बानी और देह की भंगिमाओं–मुद्राहों से स्त्री–जीवन को महाकाव्यात्मक विस्तार दिया।

भिखारी ठाकुर ने अपने जीवन के लिए नए सिरे से संवेदना का सन्धान किया। रचने की प्रक्रिया में वह स्वयं को भी माँजते रहे। भिखारी ठाकुर के

निर्माण में रामानन्द सिंह, बाबूलाल और मनतुरनी देवी की महत्वपूर्ण भूमिका थी। रामानन्द सिंह उनके अन्तरंग मित्र थे। उन्होंने अपनी अन्तरंगता से भिखारी ठाकुर को सँवारने का काम किया। भिखारी ठाकुर उन्हें अपना राम मानते और गाँव–जवार के लोग दोनों को राम–लक्ष्मण की जोड़ी। रामानन्द सिंह ने हर हाल में उनका साथ दिया। सखा–धर्म निभाया। जाति–समाज ही नहीं भिखारी ठाकुर के भीतर छिपे दुर्बल मनुष्य को भी ललकारते रहे। भिखारी ठाकुर के दूर के रिश्तेदार बाबूलाल संगीत के जानकार थे। उनके पास नाच–दल के गठन और संचालन का अनुभव था। उन्होंने भिखारी ठाकुर के भीतर छिपे कवि–नाटककार–नाट्यकर्मी को आविष्कृत किया।

बाबूलाल की आलोचना ने भिखारी ठाकुर की कल्पनाशीलता के पंख खोले। भिखारी ठाकुर जब–जहाँ ठिठके बाबूलाल ने उनके रचनात्मक विवेक को नई त्वरा दी। मनुतुरनी पत्नी थीं। वह भिखारी ठाकुर के अन्तर्द्वन्द्वों पर जीवन भर चोट करती रही पुत्र की लालसा होना हीनता का बोध, मनतुरनी ने भिखारी की आँख में उँगली डालकर उन्हें सच दिखाया, प्रश्नाकुल बनाया। उन्हें दुख और दुख के भेद का पहला पाठ मनतुरनी ने ही पढ़ाया था। बेटी के रूप में जन्म लेकर मन तोड़ने के लाँछन से उपजे नाम के साथ जीवन जीती मनतुरनी ही थी जिनसे भिखारी ठाकुर ने यथार्थ को बरतने का कौशल सीखा।

भिखारी ठाकुर ने बिदेसिया, भाई–विरोध, बेटी–वियोग, विधवा–विलाप, कलयुग–प्रेम,

भिखारी ठाकुर : लोकजिजीविषा के निश्छल प्रतीक

राधे श्याम बहार, गंगा–स्नान, पुत्र–वध, गबरघिचोर, बिरहा–बहार, नकल भाँड के नेटुआ और ननद–भउजाई–कुल बारह नाटकों की रचना की। भजन –कीर्तन और गीत–कविता की लगभग इतनी ही पुस्तकें और प्रकाशित हुईं। उनके नाटकों बिदेसिया, बेटी–वियोग और गबरघिचोर को सर्वाधिक प्रसिद्धि मिली। लोक–प्रचलित धुनों में रचे गये गीतों और मर्मस्पर्शी कथानक वाले

नाटक बिदेसिया ने भोजपुरी भाषी ग्रामीण जन जीवन की चिन्ताओं को अभिव्यक्ति दी। विरहिणी नायिका प्यारी सुन्दरी, विदेश गए नायक परदेसी, सन्देशवाहक बटोही और परदेस में नायक की प्रेयसी रंडी– यही चारों इस नाटक के मुख्य पात्र हैं। भूमि का असन्तुलित बँटवारा और रोजगार का अभाव आज भी बिहार के गाँवो से लोगों को पलायन के लिए विवश करता है। असंख्य लोग जीविका की तलाश में दूरस्थ नगरों की ओर भागते हैं। इस कारण लम्बे समय से पति का प्रवासी होना इस क्षेत्र की गम्भीर और मार्मिक समस्या है। गाँवों में छूट गई स्त्रियों की जिन्दगी तेज हवाओं में दीए की लौ की तरह काँपती रहती है। भिखारी ठाकुर ने इस काँपती हुई लौ की विविध छबियों को रंगछबियों में रूपान्तरित किया। उन्होंने अपनी कविताई का रंगभाषा के रूप में उपयोग किया। उनके नाट्यरूप जीवन से गहरे जुड़े थे। उन्होंने घर–घर गाए जानेवाले संस्कार गीतों और लोकगीतों में युगों से बह रही पीड़ा की अजस्र धारा को कालविद्ध किया। यह कालविद्धता रंगमंच की अनिवार्यता है। अपनी लोकप्रियता के कारण बिदेसिया भिखारी ठाकुर के समूचे सृजन का पर्याय बन गया। उन दिनों वह चाहे किसी नाटक का प्रदर्शन करते, लोग उसे बिदेसिया ही सम्बोधित करते। लौंडा–नाच के नाम से प्रचलित नाच की शैली को उन्होंने अपने नाट्यरूपों में नई भंगिमा और इस बदले हुए रूप को नया नाम मिला–बिदेसिया।

बेटी–वियोग में स्त्री–पीड़ा का एक और रूप उनके सामने था। पशु की तरह किसी भी खूँटे से बाँध दिए जाने का दुख और वस्तु की तरह बेचकर धन–संग्रह के लालच की निकृष्टता को उन्होंने कथ्य बनाया। स्त्रियों ने अपने जीवन की इस त्रासदी को बार–बार देखा था। आकाश, पृथ्वी, विवाह–मंडप, ब्राम्हण के मन्त्र और पिता की जंघा के जिस कम्पन को वे स्वर देती रही थीं भिखारी ठाकुर ने उसे आर्तनाद बनाकर एक ऐसी शक्तिशाली रंगभाषा रची जिसकी अर्थदीप्ति से गह्वरों में छिपी नृशंसताएँ उजागर हो उठीं। यह अतिश्योक्ति नहीं है और जनश्रुतियों में दर्ज है कि बेटी–वियोग के प्रदर्शन से

भोजपुरी भाषी जीवन में भूचाल आ गया था। भिखारी ठाकुर को विरोध का सामना करना पड़ा। पर यह विरोध साँच की आँच के सामने टिक न सका। भिखारी ठाकुर की आवाज अपेक्षाकृत और टाँसदार हो उठी। इतनी टाँसदार कि आजादी के बाद स्त्री–पीड़ा का नाद बन हिन्दी कविता तक पहुँची। बेटी–वियोग का नाम उन दिनों ही गुम हो गया। जनता ने इसे नया नाम दिया–बेटी बेचवा। गबरघिचोर नाटक में भिखारी ठाकुर विस्मित करते हैं। उनकी पृष्ठभूमि ऐसी नहीं थी कि उन्होंने ब्रेख्त का नाटक खड़िया का घेरा पढ़ा या देखा हो। कोख पर स्त्री के अधिकार के बुनियादी प्रश्न को वह जिस कौशल के साथ रचते हैं वह लोक जीवन के गहरे यथार्थ में धँसे बिना सम्भव नहीं। एक सतत चौकन्नेपन के साथ वह अपनी रंगभाषा के लिए कौतूहल, लय गति आदि का नवसन्धान करते हैं। चुहल और व्यंग्य के साथ पुरूषवीर्य के दम्भ का उपहास उड़ाते भिखारी ठाकुर एक ऐसा संसार रचते हैं जिसमें भविष्य की स्त्री के कदमों की आहट साफ–साफ सुनी जा सकती है।

भिखारी ठाकुर की कविताई और उनका खेल–तमाशा दोनों मिलकर जिस स्पेस की रचना करते हैं, उसमें समाज के अन्तर्द्वन्द्वों–प्रश्नों–चिन्ताओं की सहज भाव से आवाजाही बनी रहती है। वह सरलीकृत और साधारण कथानकों के भीतर असाधारण कथ्य और विशिष्ट जीवनानुभव को सहेजकर जीवन्त अभिव्यक्ति करते हैं। भिखारी ठाकुर को पढ़ते हुए, मंचित करते हुए, उनके रंग मुहावरों का उपयोग करते हुए हमारे अन्तःकरण में एक बेचैनी या हलचल होती है। एक अव्यक्त उदासी या अवसाद हमारे अन्तर्जगत को बिना किसी शोरगुल के बदल देता है और एक अर्थपूर्ण संवाद पैदा होता है है जिसके साथ हम नए भावजगत की ओर बढ़ते हैं। भिखारी ठाकुर इस सच को अच्छी तरह जानते थे कि रंग प्रदर्शन एक नश्वर कला है। जनमना और मरना इसकी नियति भी है और शक्ति भी। यहाँ कुछ भी पहले का काम नहीं आता। यहाँ सब कुछ फिर से रचा जाता है। प्रदर्शन के दौरान शब्द, गीत–संगीत, अभिनय आदि ठीक उसी तरह से फिर से नहीं पाए जा सकते, जैसा हम पहले पा चुके होते है। इस

समझ ने उनके नाट्यलेखों, गीत–संगीत और रंगयुक्तियों को ग्रहणशीलता के गुणों से पूरित किया। किसी अन्य के साथ मिलकर नवीन हो जाने और इस प्रविधि से चिरनवीन बने रहने के कौशल के बल पर भिखारी ठाकुर के नाटक अपने आत्यन्तिक अर्थ और संवेदना को सम्प्रेषित करते हैं।

भिखारी ठाकुर ने अपने नाटकों में यथार्थ से रिश्ता कायम करने के लिए गैरयथार्थवादी युक्तियों का प्रयोग किया। उनकी ये गैरयथार्थवादी युक्तियाँ विविधवर्णी हैं। वह जब चाहते हैं स्थान और काल की सीमाएँ लाँघ जाते हैं। यह स्वच्छन्दता उनके नाटकों को व्यापकता देती है। स्वच्छन्द हो जाने के इस साहस से ही बहुरूपिया अभिव्यक्ति की क्षमता पैदा होती है। मंच पर एक–दो चक्कर लगाकर गाँव से कलकत्ता या कलकत्ता से गाँव पहुँच जाना, कन्धे पर बन्दूक बनी लाठी को हल में बदलकर खेत जोतते हुए किसान में रूपान्तरित हो जाना और गमछा तानकर एक तरफ दुल्हन की लज्जा और सखियों की ठिठौली का संगीत और दूसरी तरफ दूल्हा के साथ दरवाजे लगती बारात की उल्लसित भीड़ की रचना का कौशल स्वच्छन्द होने की सहज साहसिकता से ही अर्जित किया जा सकता है। भिखारी ठाकुर की यह रंगयुक्ति जीवन को उसकी समग्र व्याप्ति और अर्थवत्ता के साथ अभिव्यक्त करती है।

भिखारी ठाकुर : लोकजिजीविषा के निश्छल प्रतीक

कविताई करते हुए या संवाद रचते हुए वह भोजपुरी की गतिशीलता या नैसर्गिक नाटकीयता का भरपूर उपयोग करते हैं। उनकी भाषा की भंगिमाएँ भी विविधवर्णी हैं। भिखारी ठाकुर की भाषा में वह सब कुछ है, जिससे काव्य और दृश्य–काव्य की सहजता से निर्मित हो सके।

भिखारी ठाकुर की कविता और उनका नाट्य दोनों संगीत में रचे–बसे हुए हैं। यह संगीत शत–प्रतिशत स्थानीय है। स्थानीयता रंगमंच की पहली शर्त है। रंगमंच अगर अपने गाँव–घर का नहीं है, तो वह देश–दुनिया का भी नहीं हो सकता। भिखारी ठाकुर के नाटकों में संगीत का जो ताना–बाना है, वह

मात्र आनन्द पाने का माध्यम नहीं बनता बल्कि जीवन के समस्त तनावों–अन्तर्द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बनता बल्कि जीवन के समस्त तनावों–अन्तर्द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम भी बनता है। यह संगीत हमारी इन्द्रिय–संवेदना को उद्वेलित करता है और स्पर्श के निकट पहुँताता है। कविताई करते हुए भिखारी ठाकुर के पास यह हुनर है कि वह अपने शब्दों में दृश्य को भर दें। और शब्दों की इस दृश्यात्मकता को संगीत के सहारे मुक्त कर दें ताकि वे रंग–स्पेस में आवाजाही कर सकें। भिखारी ठाकुर के रंगस्थापत्य में संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका हैं। यहाँ शास्त्रीयता और शुद्धता का दबाव नहीं है वह लोकसंगीत की पारम्परिकता का भी अतिक्रमण करते हैं और रसिकता उपजाते है। और जिज्ञासा तथा प्रश्नाकुलता के साथ समय के पार ले जाते हैं। भिखारी ठाकुर का गीत लोककंठ में बसा कभी न थकने वाला संगीत है, जो उनके नाटकों के कथ्य की भावदशा के हस्तक्षेप से निरन्तर नवीन बना रहता है।

भिखारी ठाकुर पर यह आरोप लगता रहा कि वह स्वतन्त्रता–संग्राम के उथल–पुथल भरे समय में निरपेक्ष होकर नाचते–गाते रहे। क्या सचमुच भिखारी ठाकुर के नाच का आजादी से कोई रिश्ता था? हाँ, था। उनके नाच का आजादी से बड़ा सघन रिश्ता था। अंग्रेजों से देश की मुक्ति के कोलाहल के बीच उनका नाच आधी आबादी के मुक्ति–संघर्ष की जमीन रच रहा था। भिखारी ठाकुर की आवाज अधरतिया की आवाज थी। अँधेरे में रोती–कलपती और छाती पर मुक्के मार–मारकर विलाप करती स्त्रियों की आवाज। यह आवाज मुक्ति–संग्राम में नारों–जयघोषों को चीरकर गूंजती रही। भटकती रही। और आज भी गूँज रही है। भटक रही है। राष्ट्रगान से टकरा रही है।

i;e ckx uk ckj gk] i;e uk gkV fcdk;---
Hkkt ijh lxhr vmj ukVd

मृत्युंजय कुमार सिंह

'तोहरी सूरतिया आवे अंखियों में रह–रह/बदरा से जइसे झांके सोर चंदा रह–रह...'

इ बोल ह एगो गीत के जे हम बंगाल के सहान सिनेमाकार ऋतुपर्णो घोष के फिल्म 'अन्तर्महल' खाती लिखल रहीं। सिनेमा में भोजपुरिया देस से कलकत्ता आइल, एगो अभिजात बंगाली घर में काम करत अदमी के रोल में अभिषेक बच्चन के मुंह से इ गवाता। अपना गांव में छोड़ के आइल मेहरारू के एकांत में याद करत उ इ गा रहल बा।

बाद में सिनेमा देखत समय जब एकरा के सुननी त खेयाल पड़ल कि लोक–जीवन में बेदना के संस्कार एतना गमहीर होखे ला कि ना जनते–ओ, ओह माटी के सत जइसन, अदमी के घर क लेवेला। एगो लमहर समय से अपना गांव–लवार से दूर सहर में रहला के आदो ओह बेदना के लहर हमरा भावना में गुंथाइल अपवत। तनिका सोचीं त बुझाई कि सब लोक–भासा के भावना में दरद अउरी बेदना के ई टीस बन्हाईल बा। बड़ा नगीच से जे चार–पांच को भासा के हम जननी, पढ़नी उअर सुननी, ओह सब में एह बेदना के छाया हमरा देखे के मिलल। चाहे, उ नेपाली के लोक जीवन होखे कि बंगला, पंजाबी, मैथिली, मगही, ब्रज भा एगो बिदेसी भासा–इंडोनेशिया के, सबके लोक जीवन में अभाव उअर वियोगन बिछोह, जइसे खेतन के वींचत, पानी के केयारी होखे। अपना अपना तरे सब के जिनगी में सोसन बा, विस्थापन बा, पलायन बा, अउर ओकर टूटन के पीरा ओह लोग के लोक–साहित्य, नृत्य नाटक, संगीत, चित्रकला–सब में से झाँकेला।

जइसे परब–तेहवार, जग–परोजन, सादी–बियाह के सुख के उनमाद बा, ओसहीं उनुकर दीन–दुनिया से जुड़ल दुख बा, पीरा बा। नाचत–गावत जीए के आंगा छछनत मन के घाम चलेला। अउर एही घाम के रस जा के फरेला लोकगीत के बोल में, भाव में। भोजपुरी लोकगीत के प्रसि(विधा 'बिरहा' में सहजे ई बात कहल गइल बा।

''नाहीं बिरहा क खेती भइया/नाहीं बिरहा फरे डाढ़ / बिरहा बसेले हिरिदिया ए रामा /जब उमगे ले तब गाव।''

पद्मश्री डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र अपना लेख 'भोजपुरी धरती और लोक राग' में भोजपुरी भासा के उपलब्धि के मर्म उजागर करत लिखले बानी ''व्यष्टि चित्त में उदित प्रेम ही समष्टि छंद की आधारशिला हे। विस्तार प्रेम के प्रभाव का परिणाम है, अंत वैयक्तिक होना ही उसका स्वभाव है।'' इहे जग–जगत के चक्की के चिंता, अउर ओकरा में चलत मानुस के दिन–रता के पेराई के दुख –दरद भोजपुरी संगीत में सबहर देखाई पड़ेला। कबो मुसकात, कबो गावत, कबो अकुलात, कबो छटपटात, त कबो रोअत। अदमी के भीतर जीचत जीव के ससब किरिया, सब करमकांत अउर सब भाव के फलन

भोजपुरी कविता भा गीतन में देखल जा सकेला। चाहे ऊ 'पचरा' में पूजात देवी के साथे आपन बहुत निजी भावना के परकास होखे, कि 'झूमर' के सिंगार के हुलास, 'बिरहा' अउर 'चइता' में फरत पुरूष–कंठ के लहकारत सिंगार होखे, कि 'सोहर' में अपना पर–पिरवार आ देस–समाज के बढ़ावे क उधमी ईछान सब में भोजपुरिया संसकार के बाजत ऊ भावना बा, जे अपना तिनगी के साथे, अपना समाज अउरी देस के सब ऊ रीति–कुरूति से जुड़ल बा जेकरा से हमनी के आजो जुझ रहल बानी। रघुवीर नारायण जी के 'बटोहिया' प एक नजर डाल के देखीं, गा के देखीः

'मोरे प्रान बसे हिमखोह रे बटोहिया।
एक द्वार घेरे राम हिम कोतवलबा से,
तीन द्वार सिंधु घहरावे रे बटोहिया।
जाऊ जाऊ भइया रे, बटोही हिन्द देख आऊ
जहवाँ कुहुकी कोइली बोले रे बटाहिया।....
सुंदर सुभूमि भइया भारत के देसवा रे
मोरे प्रान बसे गंगाधर रे बटोहिया।''

रघुवीर नारायण जी के भोजपुरी कंठ में, एह देस के समूचा भूगोल फहराता, इतिहास के गरब से भरत छाती, आजु के दिन–दुनिया से लड़े के ललकार, अउर एगो 'पवन सुगंध मंद अगर चंदनवा से' भरल भबीसत के सपना हिलोर मारता। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी भोजपुर के ई मूल भाव के 'सोगहग' कहत रही, माने 'समग्र के भाव'।

लेख के छोट अउर सुगम राखे के सीमा के कारन भोजपुर के संस्कार गीत, श्रम–गीत, उत्सव गीत के अलग–अलग उदाहरन एहिजा देल कठिन बा, लेकिन ई कहल जरूरी बा कि एह सब प गमहीर काम भइल बा, अउर बड़हन बड़हन किताबो लिखाइल बाड़ी स। भोजपुरी लोक संस्कार के चाहे सोहनी, रोपनी, बारहमासा, जँतसार में सुनीं, भा कजरी, बहुरा, पीड़िया अउर झूमर में–लोक–हिरदय के एह धरती से गाढ़ अनुराग के एगो बिरल नमूना देखे के मिली। कबो मन से भोजपुरी के 'आल्हा' सुनीं अउर देखीं कि कइसे एकक गो भाव के साथे गावे के धरन अउरी ढोलक के आवजाज बदले ला। हमरा कान में अबो बाजेला बचपन में सुनल ढोलक के फड़कत थाप पर नाचत बीर–रस के उ बानी, जहवाँ ऊदल के घोड़ा 'मिरदुल' के बखान करत गवैया गावे :

''आगे पावै दांत से काटे
पीछे टापन से टपियाय
अगल बगल मे धक्का दे-दै
कितने मरद गरद होइ जांय....अरे बाह जवानों।''

ठीक घोड़ा के चाल जइसन सरपट भागत गायिकी अउर ओकरा से ताल मिलवले ढोलक के आवाज–दूनों मिल के लागे कि नस–नस में खून खउल के उफनता। भोजपुरी गीतन के बोल में लिखलकर हरफ से जादा 'ध्वनि' के परताप सराहे लायक बा, जेकरा अंगरेजी साहित्य में 'ओनोमेटोपिया' (Onomatopoeia) कहल जाला। आल्हा के उपरोक्त बोल में देखी कइसे 'टापन से टपियाय' सुनत, घोड़ा के टाप मारे के भान, सहजे होखे लागता। 'घहरावे' 'हहराय' 'फहराए' 'लरूआय' 'झझार' जइसन बोल से खाली एगो भाव नाहीं बलुक ओकर किरयात्मक बिसेसतो फूटेला।

एहू में एगो बिसेसता लेले चलेले भोजपुरी। भोजपुरी के लोकगीत के एगो बड़हन जमात बा जेकर लिखनहार भा गवनहार के केहू ना जाने, लेकिन भोजपुरी के सब रूप में उनुकर गीत गावल जाला। एह गीतन मे जन–हिरदय के भेदे के अइसन गुन बा कि ऊ बड़–बड़ कवि के कविता में ना सुनाई। ई एह भासा के 'सम्प्रेषण' के खूबी ह।

एही खूबी के कारन, बॉलीवुड सिनेमा से ले के भोजपुरी के सब तरह से बयपारिक सिनेमा में भोजपुरी के लय अउरी धुन दूनों के तूती बोले ला। चाहे ऊ ए. आर. रहमान के 'बम्बई' फिल्म के मूल–संगीत के स्कोर होखे, कि अमिताभ बच्चन के गावल 'रंग बरसे भीगे चुनरवाली, रंग बरसे'...., ऊ गुलजार के लिखल 'बीड़ी जराय ले जिगर से पिया...' होखे भा 'माथे पे लगाई के बिंदिया...' ठुमरी वाला चलन, भोजपुरी लोकगीत एकह मामला में पंजाबी अउरी राजस्थानी लोकगीत से हाथ में हाथ मिलवले बा। भोजपुरियां गीतन के धुन बंगला सिनेमा तक में आवे लागल, अउर अइसन–अइसन भाव के सँवारे लागल लेकर मिसाल जल्दी कह ना मिली। बंगाली सिनेमाकार ऋतुपर्णो घोष चहितन त खाली ढोल, झाल, करताल भोजपुरी धुन प बजवा के अपना फिल्म 'चोखेर बाली' में काम चला ले सकल रहना, लेकिन उनुका मन में भोजपुरी के ऊ बोल बसल रहे, जेकरा बिना उनुका ऊ चुनल दृश्य, खाली बुझात रहे।

अपना तरफ से पटना, बनारस, सबहर घुमत रहलें जबले उनुका अपना मन माफिक राम–भजन ना मिलल। पार्श्व–गायान रहे, बड़ा आराम से काम चलावे लायक कुद हो सकत रहे, लेकिन ई बंगाल के ओह कलाकारी संस्कृति के परिचय ह जे ओहिजा के लोग अपना लोगीत क साथे दोसरों लोग के लोकगीत आ साहित्य जाने के आगरह राखेलन। भोजपुरी के एहि गभीर 'सम्प्रेषण' के भाव से परभावित हो के उरदू के महान सायर फिराक गोरखपुरी जी अपना 'तराना–ए–इ क' के मूल में भोजपुरी लोकगीलत के ई टुकड़ा लिखनी–

'जलबा चमके उजरी मछरिया, रन चमके तरवार,
सभवा में चमके मोरे सैयां की पगड़िया, सैजिया प बिंदिया हमार।''
''जाहु हम जनिति कि धिया कोखि जनमिहे
पियती हम मरिचि झझार ए
मरिचि के झारे झुरे धिया मर जइती,

छुटि जइते गरेहुआ संताप ए।...'' तिलक–दहेज के मार से' केकरों घर से बेटी जनमला के दुख अउर निरासा के'' अधम पांकी में छूबत समाज के गोहरावत, एगो माई के हिरदय से फुटल ई बानी सुन के कवना आँखि से लोर ना डरकी? कोनो मंगता के अबर बानी ना ह, एकरा में बिरोध के उहे अगिनजोत बा जेकरा कारन एह कुयति के अनहार में अब ले हमनी के समाज आकंठ ना डूबल। एक ओरी बेटी के ना चहला के एतना करून ग्लानि, त दोसरा ओरी बेटी के ना जनमला से, अंगना के सुन होखे के दुख में बिलखत माई के कहल, कि 'तोहरे बिन सून अंगनवा ए बेटी...' अउर बाद में अपना मरद से अपना बेटी खाती सुपातर बर खोजे के अपील करत ई गाबल कि

'हमरे धिया के जोग बर खोजु बाबा हो
धिया मोर भइली सयान हो।।
अइसन धिया बाबा मोर बढ़ि गइली

जइसे बढ़े दुजिया के चान हो...
धिया से उरित हम कब अपना होइबो हो,
कब करब बाबा कनयादान हो।''

निसचित रूप से ई कहल जा सकेला कि भोजपुरिया जिनगी के दरपन है, भोजपुरी लोकगीत। ओकरा साथे–साथे, ई ओह काल–खंड से जीयत, ओह समाजो के दरपन कहल जा सकेला, जेकर सुख–दुख एह गीतन में पीरोअल बा। सवदेसी चेतना के मुखर करत, बाल–बियाह अउर कम उमिर के लइकी के, एगो अधेड़ भा बूढ़ मरद से बियाह कराबे के, बाउर चलन प अघात रत बियाह–गीत में गावल जाला–''बाल–बियाह जन करू मोरे बाबा हो/ बाल–बियाह दुख के खानि हो/ बैलवा से बछिया ना जोरहु बाबा हो/मानहु बिनती हमार हो।''

सिंगार के फरहर तंरग में बसंत के 'चइता' गाबत ऊहे औरत के कंठ से इहो गबाला कि

''रामा चइत के निदिया बड़ी बइरिनिया हो रामा।
सुतलो बलमुआ नाहीं जागे हो रामा।''
अउर 'पूरबी' में तनी लय अउर ताल बदलि के कहाला–
''जहिया से सैयां मोर छुबले लिलरबा
हो दुरलभवा भइले ना, मोर बाबा के नगरिया
कि हो दुरलभवा भइले ना।''

भोजपुरी लोकगीत, गएगो जीव के खाली मन के बाते नाहीं, ओकरा जिनगा क तमाम दारसनिक समझ के रस से भरल बा। ऊ 'फगुआ' गावत खाली तेवार ना मनावे, ओकरा में आपन सुख–दुख अउरी अपना देस के गुनो गाबेला। राजनितिक अउर सामाजिक घटना सब प फबती कसत लोकगीतन के त खान ह भोजपुरी।

यूसुफ आजाद कौबाल के गीत 'इनकर बिगड़ल बा चलनिया कइसे सपरी... 'में नारी–मुक्ति के आंदोलन से उपजल गंबई मेहरारू लोगिन प सहरी चाल–ढाल के असर, अउर ओकरा से बढ़त पारिवारिक तनाव के चिंता के बड़ा व्यगात्मक परकास भइल बा।

'एगो डीजल खुलल बा छापरा से / ओहि डीजल गड़िया प आब तारी इंदिरा गांधी/खबर पठावताड़ी पटना से....,

'चाहे नत आईं, हमरा अंगाड़ी ए गान्ही जी/ जहवाँ बानी ओहिजे से तारी ए गान्ही जी...' जइसन बहुत गीत हमरा सुने के मिल, अउर ऊ परंपरा आजो चालू बा। हाले में फिल्म निरदेसक अनुभव सिन्हा जी के 'बम्बई' में का बा,' संगीत–विडियों के जवाब में, बिहार में का बा' के, ना जानी केतना गीत बन गईल। त भोजपुरी लोकगीत–संगीत समझीं कि एगो अइसन परंपरा के कलकल बहत बहाव ह, जे अपने त भाव से भीजल बड़ले बा, अपना साथ के माटियों के उपजाऊ अउर नम बनइले राखेला।

अपना सम्बेदना अउरी गाबे के शिल्प में एके लेखा भइला के बादो हमनी के भोजपुरी भासा–छेत्र में जेइसी स्थान–भेद के कारन भासा–भेदो जाला, ओसहीं कंठ से गाबत एह लोकगीतन के बनी अउरी गायन शैली स्थान –भेद के साथे बदलत चलेला। जैसे कि सारण अउर चंपारण के भोजपुर अउर पच्छिमी बलिया, आजमगढ़ अउर गाजीपुर के भोजपुरी में बड़ा साफ अंतर देखाला। मिर्जापुर, बनारस आ बलिया, छपरा अउरी आरा के बोली में ई अंतर अउरी साफ देखल जाला। भासा–विज्ञान के नजर से देखीं त जनपद अउर अंचज ही नहीं हर चार कोस प बोले जाय बाला बोली के आपन–आपन धरन होखे ला। हम त अपना गांव में, जे रोहतास जिल के कररकाटा थाथा में पड़ेला, भोजपुर के हेंठार अउर छपरा के बोली के शैली, उच्चारन और बो के धरन प लोग के हंसी उड़ावत देखले बानी। अभाव उदर जिनगी जीये के लड़ाई से चिरल लोक जीवन के बोल अउरी अभिव्यक्ति चाहे जेतना रूखड़

होखे, उ अभिजात बरग के सहरी सौंदर्य–बसेस के चाहे जेतना धक्का मारत होखे, मानूस के नित जीयत जिनगी के सम्बेदना अउर संस्कार के जे लहक एकरा में बा, उ अउर कोनो जगहा खोजले से ना मिली। 'प्रेम बाग ना बौरे हो, प्रेम ना हाट बिकाय...'

भोजपुरी नाटक

नाटक, स्वांग, रामलीला, तमाशा, यक्षगान, दशावतार भा जातरा–लोक–जीवन में बिनोद आ मनोरंजन के एगो पुरान विधा ह। मनोरंजन के साथे–साथे इ एगो बिधि रहे अनपढ़ भा कत पढ़ल आ गंवार लोगिन के बीच जागरूकता फैलावे के। गंभीर बात आ सोच के बड़ा मजाकिया ढंग से लोग के कह देल जात रहे, चाहे उ सामाजिक होखे भा राजनिति से जुड़ला। 'स्वांग–नौटंकी' के जिकिर सोरहवीं सदी के अबुल–फजल के 'आइन–ए–अकबरी' क काल से सुनल जा रहल बा। उनइसवीं सदी में मथुरा अउर हाथरस के 'भगत' अउर 'रासलीला' आ राजस्थान के 'खयाल' के रूप में एकर बड़हन रूप उभर के आइल। बाद में कानपुर और लखनऊ के 'नौटंकी' के एगो अलहदा रूप बनल। भक्ति के कथा–कहानी के नाटकीय रूप में संगीत के साथे मंचनकरत ई विधा गते–गते समाज के कुरूति अउर आपन संस्कृति के विघटन के उजागर करे वाला एगो जागरूकता जगावे के बिधि–बिधान बन के आबे लागल। अब त एकर एगो आधुनिक रूप अमेरिका जइसन देसो में देखे के मिलतां डॉ. देवेन्द्र शर्मा अउर पंडित राम दयाल शर्मा के 'मिसन सुहानी' नाम से बनावल नौटंकी अमेरिका में बसल, भारतीय प्रवासी लोग के बीच अपना समाज अउर चाल–चलन के बदलत रूप के दुखद बरनन अउर चित्रण करता।

भोजपुरी में नाटक, 'रामलीला' खेले के परथा अउर बाद में 'नाच' के चलन– इ दूनों बिधा के जोड़ले कसे आइल। घर के लइकी अउर मेहरारू प सामंती समाज के अवाब रहे के कारण रामलीला, भा नाच आ नौटंकी में, औरत

के किरदार भरदे औरत बन के करत रहन। अइसे भरत मुनि के 'नाट्य शास्त्र' में भी 'रूप अनुसारिनी' के नाम से मरद लोग के औरत के भेस में नाटक करे के चलन के चर्चा कइल गइल बा।

एकरा में कोनो सनदेह नइखे कि नाटक खाली भोजपुरी क्षेत्र में नाहीं, बलुक समूचा देस आ दुनिया में सधारन लोग के जागरूक बनावे के खूबि कारगर औजार के रूप में उपयोग भइल बा। 'जजाद ना जजाद के डॉटी चिन्हल जाला...' सीवान के 'संगम डांस अउर ड्रामा कंपनी' के एगो कलाकार के जब ई बात कहत सुननी, अउर ओ बात प दरसक लोग के हंसी और ताली के पुरजोर सराहना, त संगे–संगे बंगाल के 'जातरा' अउर इंडोनेशिया के 'बायान गुलित' (कठपुतरी के खेल) के दृश्य आँख के आगे नाचे लागल। गाँव–गाँव में 'जातरा' अउर 'बयान गुलित' के खेला के सकय ठीक अइसने माहौल समने देखने के मिले ला।

फ्रांसिसी क्रांति से ले के मय नव–जागरन आ औद्योगिक क्रांति के मूल जनता के उ जागरूक कने रहे जेकरा बाहन के रूप में लोक–नाटक, संगीत अउर नाच के काजे लगावल गइल। भोजपुरिया प्रदेश के लोगिनो खाती लोक–कथा क नाटक, नाच भा संगीत एही जागरन के मसीन के तरे काम कइलख। आज के डिजिटल अउर इंटरनेट के जमोनों में एह बिधा के अलग–अलग रूप में प्रयोग कइल जा रहल बा। 2011 में सोसल वर्क एंड रिसर्च सेंटर के दल के साथे सुहासिनी सिंह के गाबल, बिलासपुर (छत्तीसगढ़) के संजीव खुदशाह के लिखल, गीत 'कहब त लाग जाई धक् से...' दलित जागरन के गीत के रूप में बहुत परसिध भइल बा। इहाँ तक कि बॉलीवुड के हाले के एगो सिनेमा 'आर्टिकल 15' में यह गीत के उपयोग कइल गइल बा। ई दलित और ओकरो से बढ़ के सब गरीब–गुरवा लोग के जिनगी के दुख के उजागर करत गीत ह, जेकरा में एह बात प जोर दिहल गइल बा, कि विकास अउरी धन के भोग के अधिकारी खाली उहे, लोग होलन, जिनिका हाथे धन अउर सामाजिक सक्ति बा।

सामाजिक भेदभाव, छूआछूत, नारी के भिन–भिन तरह से अपमान, लड़की के जनम से अपना घर में बोझ समझल, ओकर बाल–बियाह भा अनमेल बियाह करावल, गरीबी के मार से घर–गाँव छोड़ के परदेस में जा के ओहिजा के आपद–बिपद में जीयत अदमी के जिनगी, अउर एह परदेसी जिनगी के अपना परिवार पर पड़त ऊँच–नीच असर–अइसन छईंटी भर कुरीति के भोजपुरी नाटक और गीतन के माध्यम से उजागर करे के काम बहुत गीतकार, गायक और नाटककार लोग कईले बाड़न।

हालांकि नाटक के बिधा के परचार अउर 'बिदेसिया नाटक' के नाम से ओकर जुड़ाव, सबसे ज्यादा भिखारी ठाकुर जी के मंडली के मारफत भइल, लेकिन उनुका से पहिलहूँ राम सकल पाठक द्विजराम जी के नाटक बिदेसिया के थम प खेलल जात रहे। ओकरों से पहिले, 1858 में, दिल्ली से आ के बनारस में बसल सुंदरी बेसया अपा गीतन के कथन में 'बिदेस' शब्द के उपयोग संबाद के रूप में कइले बाड़ी। बाद में 1884 में कासी के रहे वाला पंडित बेनी राम जी लिखनी काहे मोरी सुध बिसराये रे बिदेसिया/ तड़पि–तड़पि दिन रैना गवायो रे/काहे मोसे नेहिया लगाए रे बिदेसिया। पंडित बेनी राम जी के हाथे इहे सायेद सबसे पहिला बेर 'बिदेसिया' के प्रयोग सुरू भइल (एम.मजूमदार (2010) के किताब 'काहे गइले बिदेस, (व्हाई डिड यू गो ओवरसीय से) भिखारी ठाकुर ओहि बिदेसिया के परसंग अउरी परंपरा के ले के गीत–नाट्य 'बिदेसिया के जनम ' दिहलें।

समय के साथे 'बिदेसिया' भोजपुरी लेखन में एगो मोटिफ भ गइल, अउर रह–रह भिन–भिन रूप ले के आबे लागल। उहे मोटिफ हमरा उपन्यास 'गंगा रतन बिदेसी' (भारतीय ज्ञानपीठ) में भी उभर के आइल बा। एक तरह से कहीं त ई मोटिफ भोजपुरी साहित्य में गीतन के 'टेक' हो गइल बा, जेकरा संगीत के साधु भाषा में 'ध्रुव' भा उदग्राह कहल जाला। अंग्रेजी साहित्य में चर्चित मोटाफिकेशन के एगो नमूना है 'बिदेसिया' के मोटिफ।

भोजपुरी गीतन में सटीक ताल खाती 'टेक' के प्रयोग कइल जाला। चाहे ऊ 'हो रामा' होखे कि 'बटोहिया', 'बिदेसिया' भा 'फिरंगिया'। अपना गांव–घर के माटी से उखड़ के परदेस में बसल भा जिनगी काटत भोजपुरी प्रदेश के लोग के आदर अउर प्रेम–भाव से 'बिदेसिया' के नाम से पुकारे के प्रथा बहुत पुरान ह, अउर ई संज्ञा गिरमिटिया बन के बिदेस गइल लोग से ले के अपना देस में विस्थापित लोग सब खाती प्रयोग कइल गइल बा। ओह लोग के मन के दुख–दरद के बरनन करत 'बिदेसिया' एगो 'ध्रुव' भा 'टेक' बन के भोजपुरी साहित्य अउर नाटक में देखे के मिले ला।

एगो 'बिदेसिनी' खाती जइसे कविगुरू रविन्द्रनाथ ठाकुर गबले, 'आमी चिन्हिगो' चिन्ही तोमारे, ओ गो बिदेसिनी, तुमि थाको जे सिंधु पारे, ओ गो बिदेसिनी'..., त भिखारी ठाकुर गबलें ''... कतहूँ ना देखो रामा सइयां के सूरतिया से/जियरा गइले मुरूझाय रे बिदेसिया''।

'बिदेसिनी' भा 'परदेसी' से प्रेम कइला के घटना, अउर ओकरा बिछोह के पीरा, रह–रह हमनी के लोककथा अउर लोक–साहित्य में उजागर होल। ऊ चाहे कालिदास, के 'मेघदूत' के यक्ष होखे, कि मंझन के 'मधुमालती,' भा जायसी के 'पद्मावत,' सबसे अपना प्रेमी से छूटला भा बिछुड़ला के दरद महसूस कइल जा सकेला।

हिन्दी के कवि महाप्राण निराला के जइसन भिखारी ठाकुरों के ज्ञानी बनावे के काम बंगाल के मेदनीपुर जिला के कइल ह। उहाँ के अपनहीं एह बात के अजागर करत लिखले बानी–''अल्प काले में लिखे लगनी/एकरा बाद खड़गपुर भगनी/ललसा रहे जे बहरा जाई/छुड़ा चलाक दाम कमाई/ गइनी मेदिनीपुर के जिला/ओइजा देखनी रामलीला...!!''

बदरी नारायन जी के अपना किताब (कल्चर एण्ड इमोशनल इकोनॉमी आफ माइग्रशन (RouctRedge 2017))में ई कहज कि भिखारी ठाकुर के बिदेसिया नाटक से बंगाल के 'जतरा' परभावित रहे, हमरा तनी अतिश्योक्ति

बूझता, काहेकि बंगाल में 'जतरा' नाटक के परथा जब सुरू भइल रहे, तब भिखारी ठाकुर जनमलो ना रहन। 'जतरा' पाला के उदय बंगाल के गोपाल उदय जी के हाथे 1857 के पहिलहीं हो गइल रहे, जबकि भिखारी ठाकुर के जनम 1887 में भइल रहे। हमरा हिसाब से बंगाल के 'जतरा' के परभाव भिखारी ठाकुर क नाटक के विधा प पड़ल, ना कि उनकर नाटक के 'जतरा' प। 'भिखारी हरिकीर्तन' में भिखारी ठाकुर अपन हूँ कहले बाड़न कि भुनेसर में 'रथ–यात्र' अउर बंगाल के 'जतरा' नाटक देख के उनुका मन में नाअक लिखे अउर खेले के सुध जागल।

लेकिन एह बिसय के चरचा से जादा महत्व एह बात कि बा कि भिखारी ठाकुर अपना नाटक में समाज के अइसन–अइसन बिसय, बिसेस सोसन, पलायन, मोसमात–बियाह, बाल–बियाह, भरस्टाचार आदि के उजागर कइले, अउर एट तरे कइलें कि उ समाज के हर बरग, हर जाति के लोग के मरम प जा के चोट करे लागल। देखते–देखते भिखारी ठाकुर के नाटक सब, सामाजिक चेतना अउर जागरूकता के डुगडुगी बजावत, भोजपुरिया लोगिन के घर–घर में आपन असर देखावे लागल। उनुकर 'बिदेसिया' नाटक के कथा–वस्तु त एतना परसिध भइल, कि उनुकर भासा, शैली अउर मंचन के बिधि खाती, उनुका के 'भोजपुरी के शेक्सपीयर' के नांव से पुकारे जाय लागल। भिखारी ठाकुर के 'बिदेसिया' एतना नाम कइलख कि लोग–बाग नौटंकीयो के 'बिदेसिया नाटक' कहें लगलें।

भिखारी ठाकुर के नजर हमेसा अपना नाटक के सहज और सुगम मंचन प लागल रहे, ना कि मंच के साज–सज्जा अउर ओकर मायावी प्रस्तुति प। एह मामला में उनुकर तुलना ब्रेख्त के नाटक–मंचन के साथे कइला में कोनो अतिश्योक्ति नइखे बुझात। जेक्स रेन्सीयर अपना किताब 'फ्रॉम पॉलिटिक्स टू एस्थेटिक्स' में कहले बाड़न कि ब्रेख्त के नाटक जइसे आम जनता खाती साधारण हॉल में खेलल जात रहे, ठीक ओसहीं, बड़–बड़ बुद्धिजीवी लोग के

बीचो, बिना कोनो लाग–लपेट भा साज–सज्जा के, ऊहे सरलता से ओकर मंचन कइल जात रहे। भिखारी ठाकुर के ठीक इहे बिधि रहे अपना नाटकन के खेले के।

भिखारी ठाकुर के नाटक के ई रूप, लोग के एतना भावल, कि पास–पड़ोस के इलाका अउरी राज्य के थिएटर कंपनियो 'बिदेसिया' के ढर्रा प आपन –आपन नाटक खेले लगलन। एकरा पहिले लोकनृत्य के अइसन लुभवन रूप भोजपुरिया इलाका में कबो ना रहे। लोकनृत्य क नांव प ढोल, पखाउज, झाल, करताल अउर जोरी प कइल 'नेटुआ' (नट जाति के नाच), 'धोबी' लोक–नाच अउर 'जोगीरा' जइसन नाच होत रही स, लेकिन कबनो में भिखारी ठाकुर के 'बिदेसिया' वाला जीवनबोध ना रहे। लेकिन एह सब लोक–नाच के बिधि, गीत आ कथा–पाठ में सीखत भिखारी ठाकुर लोकनाच 'गोध' अउर 'जोगीरा' के तरीको अपना 'बिदेसिया' में ले अइलन। 'बिदेसिया' लोकगीत के साथे नाच करत कलाकारन के बीच संबाद के एगो बिसेस रूप रहे। एकरा में साधू, फकीर, जोगी–सब नाचत अउर गावत रहन। 'बिदेसिया' के कलाकार (पात्र) स्टेज पर आवते डुग्गी के ताल प नाचल सुरू क देस। पछिमी सभ्यता के 'ओपरा' के नीयन, 'बिदेसिया' के सब कलाकार में गावे के गुन देखल जात रहे। 'बिदेसिया' नाटक संबाद अउर संगीत के मिला के खेलल जात रहे। गीत सब लोकधुन प गवाय–जइसे कि 'लोरिकायन,' जँतसार, सोरठी बिरहा, बारहमासा, पूरबी, आल्हा, पचरा, कुंवर बिजय, निरगुन, चौपाई आ चउबीसा।

एक तरह से भिखारी ठाकुर बंगाल के नव–जागरन के हवा, अपना कोरा में ले के अइले, अउर भोजपुरिया समाज में नव–जागरन के नींव रखलें। आ उहे नव–जागरन के फल ह जे भोजपुरी साहित्य, लोक–नाटक अउर लोक–गीत में, गते–गते, सिरजन के धार तेज होत गइल।

fgUnh dh Hkkt ijh dforkb

प्रकाश उदय

हिन्दी की भोजपुरी कविताई को लेकर कुछ बातें रखनी हैं, लेकिन इस विषय पर पहुंचने के लिए जरूरी है कि कुछ दूर से चलकर आया जाय। आशा तो है कि भले तनिक देर–सबेर, लेकिन विषय तक पहुँच ही जायेंगे, और भले भरपूर नहीं, संतोषजनक भी नहीं, लेकिन कुछ तो विषय के भीतर भी चल ही लेंगे। हालांकि एक तरीका यह भी है कि सीधे विषय पर आया जाय, और जो भी चलना हो, जितना भी, विषय के भी तर ही चला जाय। लेकिन भोजपुर संस्कृति की एक मति, जो कि संयोग से एक कविता के जरिए ही प्रकट हुई है, ऐसा करने से मना करती है। वह हबक कर नहीं बोलने को कहती है, ठबक कर नहीं चलने को कहती है, पाँवों को धीरे धरने को कहती है–''हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरे धरिबा पाँव''। इस धीरे पाँव धरने को जरूरी है कि कहीं भी कुछ चल कर ही पहुँचा जाय, सीधे वहीं पर प्रकट होने से भरसक बचा जायै सो....।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल तक तो धड़ल्ले से और एक हद तक आधुनिक काल के भारतेन्दु युग तक, हिन्दी कविताई मुख्यतः और मूलतः हिन्दी की ब्रजभाषा कविता से, हिन्दी की अवधी कविता से, हिन्दी की राजस्थानी कविता से, हिन्दी की मैथिली कविता से, हिन्दी की भोजपुरी कविता से औरि हिन्दी की और–और हिन्दियों की कविता से बनती है। उन हिन्दियों में, एक खड़ी बोली भी है, जब–जब और जहाँ–तहाँ। लेकिन द्विवेदी युग से लेकर अब तक की हिन्दी कविता, हम जानते हैं कि मूलतः और मुख्यतः हिन्दी की खड़ी बोली कविता है। पहले हम हिन्दियों में से किसी भी हिन्दी की कविता

को, अपनी सुविधा के लिए संक्षेप में हिन्दी कविता कहते थे, आज–कल, उसी सुविधा और संक्षेप के लिए, लेकिन, हिन्दी कविता सिर्फ खड़ी बोली हिन्दी की कविता को कहते हैं। ऐसा कभी नहीं हुआ, द्विवेदी युग से लेकर छायावाद, प्रगति–प्रयोगवाद से लेकर आज तक कि हिन्दी की बाकी हिन्दियों की कविताई ठप्प पड़ गई हो, लेकिन उन्हें जितनी शालीनता से हिन्दी कविता से बाहर कर दिया गया, लगभग उतनी ही तल्लीनता से बाहर ही रखे रहने भी दिया गया। एक तरह से यह तय किया गया, और हो भी गया कि हिन्दी ही हिन्दी है, हिन्दियाँ हिन्दी नहीं हैं।

यहीं, एक हम सबकी जानी हुई और हमसब से बिसरी हुई बात को याद करते है। बात यह है कि जिस हिन्दी के पाँच बोली–वर्ग हैं, जिन पाँचों बोली–वर्गों की ढाई दर्जन के करीब बोलियाँ हैं, वह वाली हिन्दी कोई और हिन्दी है और वह वाली हिन्दी जिसे आज हम हिन्दी कहते हैं, जिस हिन्दी का अभी इस बतकही में इस्तेमाल हो रहा है, वह कोई और हिन्दी है। इसे अलगाने के लिए, फिलहाल, कुछ समय के लिए, इस वाली हिन्दी को 'खड़ी बोली' या 'खड़ी बोली हिन्दी या 'खड़ी हिन्दी' कह लेते हैं। याद रखें कि यह खड़ी हिन्दी खुद भी उस बड़ी हिन्दी के पश्चिमी हिन्दी नामक एक बोली–वर्ग की पाँच बोलियों में से एक बोली रही है। क्या फर्क है उस हिन्दी और इस खड़ी बोली हिन्दी में ? सबसे बड़ा फर्क यह है कि वह वाली हिन्दी खुद कोई भाषा नहीं है, कई भाषाओं के एक परिवार का नाम है। वह भाषा–नाम नहीं है, भाषा वैज्ञानिक नाम है। इसके उलट यह वाली जो हिन्दी है, खड़ी बोली हिन्दी, वह एक भाषा है। जाहिर है कि ब्रजभाषा, भोजपुरी वगैरह को जब हिन्दी की बोली कहते हैं तो तभी तक ठीक कहते है जब तक हिन्दी से हमारा मतलब खड़ी बोली हिन्दी हर्गिज नहीं होता। दुर्भाग्य यह है लेकिन, कि बच्चे तो बच्चे, अच्छे–अच्छे भी 'इस हिन्दी' और 'उस हिन्दी' के इस घाल–मेल से पर्याप्त घायल मिलते हैं। यह सही है कि आज हम जिसे हिन्दी कहते हैं, खड़ी बोली हिन्दी, वह वही नहीं है, जो कभी खड़ी बोली थी, जिसे कौरवी भी कहते थे,

सरहिन्दी या सिरहिन्दी भी कहते थे। वह आज जिस रूप में है वह रूप उसे देने में हिन्दी–परिवार की सारी भाषाओं ने अपना कुछ–कुछ खर्च किया है। और भी, आगे–पीछे और भीतर–बाहर की कई–कई भाषाओं ने अपना कुछ–न–कुछ खर्चा किया है, यह एक लंबा हिसाब–किताब है। यह अलग बात है कि इस हिसाब–किताब में हमारी रूचि घटती गई और ऐसे सुधीजन की भी कोई कमी नहीं हैं। जो खड़ी बोली हिन्दी के हर विकास को हिन्दी–परिवार की भाषाओं की ही बपौती माने बैठे हैं, और मान कर ऐठे बैठे हैं, सो अलग से। हालाँकि ये लोग, यदा–कदा अत्यन्त श्रद्धापूर्वक, इसे एक रूपक की तरह समझाते है कि यह हिन्दी उस दुर्गा की तरह है, जिसे हिन्दी–परिवार की तमाम भाषा–देवियों ने अपनी–अपनी शक्ति से सम्पन्न किया है। यहाँ तक तो ठीक है, लेकिन उसके बाद ये रूपकी यह चाहते है कि यह दुर्गा माई ये सारी शक्तियाँ लेकर पहला काम तो ये करें कि इन सारी शक्ति–प्रदातृ भाषा–देवियों को खा जाएँ। अच्छा तो यह है कि उन्हें खाना न पड़े, ये खुद ही खबा जाएँ। यही नहीं, जो नहीं खबातीं, उनसे इन्हें शिकायत भी रहा करती है कि हो–न–हो इस देवी की राष्ट्रभाषा भक्ति में कोई खोट है। 'बल' देने का मतलब ये 'बलि' हो जाने से कम मानने को कदापि नहीं राजी। न यह मानने को राजी कि वे बनी रहेंगी तो बल देती रहेंगी। यह भी मत कहे कोई कि ये रूपकी भोजपुर्यादि भाषाओं के विरोधी है। हर्गिज नहीं। वे तो बल्कि उनके भक्त हैं। वे चाहते हैं कि हिन्दी के लिए बलिदान का सारा श्रेय इसी हिन्दी के कहे जाने वाले इलाके की ब्रज भाषादिक भाषाओं को ही मिले।

खड़ी बोली हिन्दी आज जिस रूप में खड़ी है, उसमें बांग्ला, गुजराती, पंजाबी आदि भाषा–देवियों का भी कुछ योगदान है या होना चाहिए या उससे भी बढ़कर, उनका योगदान लेना चाहिए, पाना चाहिए और हिन्दी–विद्या में इस लिहाज से भी कुछ होना चाहिए, इस तरफ न उनकी गति है, न मति है। इनके लिए हिन्दी के नाम पर मगही मेवाड़ी मेवाती बगैरह की मूँडी ममोर लेना की काफी है।

बरहाल, इस झिकझिक को छोड़ते है। जरूर मुझी में कोई खोट है। मुझी से शायद इसे छोड़ते नही बनता। दरअसल मुझसे सहा नहीं जाता कि आप हिन्दी साहित्य का इतिहास कहते हैं, लिखते हैं, और भारतेन्दु युग तक एक दूसरी हिन्दी के साहित्य का इतिहास लिखते हैं, और उसके बाद बिना कुछ कहे, बिना कुछ कहने–बताने की जहमत उठाए, उसी इत्मीनान से एक दूसरी ही हिन्दी के साहित्य का इतिहास लिखने लगते हैं। दोनों का एक ही नाम होन के चलते और हिन्दी में अंग्रेजी के बड़े 'एच' की तरह किसी बड़े 'ह' और छोटे 'एच' की तरह किसी छोटे 'ह' के अभाव के चलते जितने सारे झाम हुए, उनकी चर्चा से बचते हुए भी इतना कहना तो बनता है कि इसने भी भाषा के प्रति अतिशय संवेदनशील इस देश को भाषा–विमुख करने में, और आम आदमी तक को निल्लज होकर अंग्रेजी के पक्ष में खड़े कर देने में एक प्रमुख भूमिका निभाई है। यह जो भाषिक झाम हुआ है, उसकी वजह यह भी है कि गांधी जी की दूसरी तमाम बातों की तरह उनकी 'हिन्दी' को हिन्दी के बजाय 'हिन्दुस्तानी' कहने वाली बात भी हमने नहीं मानी। ऐसे में इस तमाम झाम में से, यहाँ कम–से–कम एक की चर्चा का लोभ है। एक फिल्म आई थी 'एक दूजे के लिए'। बहुत पहले देखी फिल्म है, हो सकता है कि विवरण में कुछ हेर–फेर हो। उसमें एक दक्षिण भारतीय लड़के को एक हिन्दी –भाषी लड़की से प्रेम हो जाता है। अंत में यह होता है कि लड़का हिन्दी सीख ले तो दोनों की शादी कर दी जाएगी। शायद एक साल का समय दिया जाता है उसे। और, कोई माई का लाल उस बेचारे को यह नहीं बताता कि उसे केवल वह वाली हिन्दी सीखनी है जिसे उसकी प्रेमिका और उसके बाबू–माई बोलते हैं। किसी ने नहीं बताई उसे यह सचाई कि हिन्दी की इस अजीबो–गरीब दुनिया में हिन्दी भाषा का मतलब है खड़ी बोली हिन्दी, और हिन्दी साहित्य का मतलब है ढाई दर्जन भाषाओं का साहित्य, वह भी तब तक जब तक महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक नहीं बन जाते। पता नहीं किस खूल पात्र ने उस बेचारे को हिन्दी भाषा के बजाए हिन्दी साहित्य वाले रास्ते पर भेज दिया

फिर भी सच्चा प्रेमी था, साल भर में सारी की सारी हिन्दियाँ सीख कर लौटा, तब तक उसकी प्रेमिका दुनिया छोड़कर जाने की हालत में थी, और वह खुद भी उसी हालत मे पहुँच जाता है। जाहिर हे कि सारी हिन्दियों के चक्कर में न पड़ा होता तो जरा जल्दी लौट आया होता, और जल्दी लौट आया होता तो दो–दो जिन्दगियाँ जाया होने से बच गई होतीं! उस समय, याद है, कि वह लड़का जब सारी हिन्दियां सीख कर लौटा था और हर हिन्दी का नमूना पेश करते हुए भोजपुरी तक पहुँचा था, आरा के सिनेमा हॉल से किसी दर्शक श्रेष्ठ ने हहर कर हाँक लगाई थी कि ''बचऊ, बढ़िया उल्लू बनवलन स तहरा के ई हिन्दिया वाला''....!

मुझे लगता है कि यह ठीक जगह है, जहाँ से हिन्दी की भोजपुरी कविताई की बात छेड़ना चाहिए। आप जानते हैं कि वह बात शुरू होगी गोरख से, कबीर से। हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी आमतौर पर इन्हें वैसे ही जानते हैं जैसे ब्रजभाषा के सूर को जानते हैं, अवधी के जायसी को जानते हैं, तुलसी को जानते है। हालांकि कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो चाहते हैं कि हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम को हिन्दी तक ही सीमित रखा जाए, मने खड़ी वाली हिन्दी तक, और बड़ी वाली हिन्दी के कबीर, सूर, तुलसी बगैरह के झंझट में न पड़ा जाय। कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जिन्हें लगता है कि इन्हें हटा देंगे तो हिन्दी में रह ही क्या जाएगा! ऐसा तो नहीं है कि इनके न रहने से रह ही क्या जाएगा, लेकिन मुझे लगता है कि हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी को, अगर मान लें कि वह मूल रूप से खड़ी वाली हिन्दी का ही विद्यार्थी है, तब भी इनके बारे में जानना चाहिए। लेकिन केवल इन्हें ही नही जानना चाहिए। देश की दूसरी–दूसरी भाषाओं के रचनाकारों को भी जानना चाहिए। कुछ को इस वाल सत्र में, कुछ को उस वाले सत्र में। कुछ को इस वर्ष के पाठ्यक्रम में कुछ को अगले वर्ष के पाठ्यक्रम में। ऐसा इसीलिए कि यह जो खड़ी बोली हिन्दी है, जो कि कौरवी पर आधारित होते हुए भी कौरवी से भिन्न एक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चली है, वह आजादी की लड़ाई के दिनों से ही एक राष्ट्रीय कोटि के मिशन की

तरह की चीज है। उसे खड़ी, खड़ी बोली, खड़ी बोली हिन्दी बगैरह की बजाय सीधे–सीधे 'हिन्दी' कहने के पीछे भी मंशा यही है, कि उसे हिन्द की भाषा के रूप में जाना जाए। गुजराती के स्वामी दयानन्द, गांधी जी, बांग्ला के सुभाषचन्द्र बोस जैसे लोगों ने उसे इस समूचे देश को एक सूत्र में बाँध सकने वाली भाषा के रूप में पहचाना। इसीलिए कि एक ऐसी खासियत हैं इस भाषा में, जो देश के दूसरे किसी भी भाषा में नही है। दूसरी सभी भाषाएँ किसी–न किसी भाषा–भूगोल की मातृभाषाएँ हैं। जबकि यह, हिन्दी यह हिन्दी कहीं की मातृभाषा नहीं है, किसी की मातृभाषा नहीं है। और इस नाते देश में हर कहीं की, और हर किसी की दूसरी भाषा या तो यह है, या हो सकने लायक है। यह भी कि इस लायक यही है, और कोई नहीं है। उसकी कोई स्पर्धा यह किसी ऐसी भाषा के साथ हो ही नहीं सकती, जो कहीं की मातृभाषा है, किसी की मातृभाषा है, क्योंकि खुद वह किसी की मातृभाषा है ही नहीं। हालांकि अब, कुछ अपने को यह कहने लायक पाने लगे हैं कि एकाध पीढ़ी से उनकी मातृभाषा भी हिन्दी ही है। ये लोग अक्सर हिन्द के उस इलाके के हैं जो पूरे हिन्द को वंचित करते हुए खुद को ही हिन्दी इलाका कहलवाने को लालायित पाए जाते हैं। हिन्दी उनकी मातृभाषा हो गई है, इसके पहले का सच यह है कि उन्होंने अभी–अभी या एकाध पीढ़ी पहले, जैसे अपने गाँव की धूल झाड़ी, गाँव में रहने वाली अपनी माई –बाप से पिंड छुड़ाया, वैसे ही अपनी मातृभाषा को भी तिलांजलि दे दी और हिन्दी को लगभग घसीटते हुए अपनी मातृभाषा बना लिया। ऐसे में, यह लिख कर दिया जा सकता है कि ऐसे लोग एकाध पीढ़ी इन्तजार करें, हिन्दी उनकी मातृभाषा नहीं रह जाएगी, इनकी जगह पर माई कहलाने लायक होकर अंग्रेजी आ जाएंगी। और आ रही है, आने लगी है, इससे भी बदतर यह है कि वह आए, इसकी एक ललक–सी लग चली है, हमे में। वैसे, यूपी में तो हिन्दी को मातृभाषा मान लेने के नतीजे अक्सर यूपी बोर्ड के नतीजों के साथ ही आ जाते है।, जब पता लगता है, कि विद्यार्थी सबसे ज्यादा फेल हिन्दी में ही हैं। दूसरी भाषा मानते हिन्दी को, जो कि वह है, तो उसे सीखने की कोशिश करते, मातृभाषा है तो कौन सीखने जाए।

मातृभाषा तो वैसे ही आना है! लेकिन सचाई यही है कि वह मातृभाषा नहीं है और इसका नतीजा हर साल हाजिर हो जाता है। पता नहीं कब हम समझेंगे कि मातृभाषा वाले लाइन पर चलने में न हिन्दी का कोई भला है, न हिन्दी वालों का। इस झूठ से भला हो भी कैसे सकता है, किसी का! अफसोस कि दूसरी भाषा वाली दिशा में हिन्दी को हमने बढ़ने ही नहीं दिया। हमने अपनी सारी ऊर्जा खड़ी वाली के बड़ी वाली से भी बड़ी वाली हिन्दी के घाल–मेल को बनाए रखने में लगाए रखी, और खड़ी वाली के बड़ी वाली से भी बड़ी वाली बनने के अवसर को भरसक खो जाने दिया। आजादी के इतने दिनों बाद भी हम यही कह सकने लायक नहीं हो पाए कि नरसी मेहता , चण्डीदास, तुकाराम हट गए तो हमारी इस हिन्दुस्तानी के पास, इस 'हिन्द–की' के पास हमारी इस हिन्दी के पास, रह ही क्या जायेगा ! इस मामले में हमसे अच्छे तो वही है जो यह कहते है कि हिन्दी में 'बाहुबली' नही देखा तो क्या देखा! नही जाना कि कटप्पा ने बाहुबली को क्यों मारा, तो क्या जाना!

लेकिन आज अगर हम हिन्दी की तमिल–तेलुगु फिल्मों की बात करने लगे है, तो उम्मीद रखनी चाहिए, कि किसी दिन हिन्दी की तमिल–तेलुगु कविताई की बात भी करेंगे, वैसे ही जैसे आज हिन्दी की भोजपुरी कविताई की कर रहे हे। हर भाषा के पास, हर भाषा की साहित्य–संपदा के पास कुछ है जो इस हिन्द के लिए कुछ खास है, जिसका मतलब है कि हिन्दी के लिए कुछ खास है। वैसे ही जैसे हिन्द की सारी भाषाओं के सारे–के सारे साहित्य में कुछ ऐसा सामान्य है, जिसके चलते वे अलग–अलग परिवारों की होने के बावजूद भारतीय भाषाएँ हैं, उनका साहित्य भारतीय साहित्य हैं। एक सामान्यता तो यही है कि सबके पास कुछ खास है। भोजपुरी के पास वह खास क्या है ? कुछ तो है ही खास कि जिसके चलते जितने खुले गले से हम विद्यापति को मैथिली का कवि कह लेते हैं, सूर को ब्रज भाषा का कवि कह लेते हैं, जायसी को अवधी का कवि कह लेते हैं, उतने ही खुले गले से गोरख को कबीर को भोजपुरी का कवि कहते हिचकते हैं। कबीर की भाषा के लिये यहां तक कि

'सधुक्कड़ी' जैसा, 'पँचमेल'जैसा एक नया ही भाषा–नाम तलाश लेते है। यह लेकिन उतने एतराज के काबिल नही है, जितना यह कि भोजपुरी वाले कबीर की भाषा को भोजपुरी बताने के लिए अक्सर, जाने कहाँ–कहाँ के तो तर्क जुटाते मिल जाते है। नाहक। मातृभाषाओं में कविताई जिस दौर की एक खास खासियत है उस दौर में, कबीर का भोजपुरी भूगोल में शामिल काशी का होना और एसी भूगोल के एक हिस्से गोरखपुर से गोरखनाथ का बावस्ता होना काफी है कि कबीर भोजपुरी के कवि हैं, गोरखनाथ भोजपुरी के कवि है और यह भी कि भोजपुरी का वि होना एकदम से भोजपुरी का कवि होना नहीं है। और बात यही तक नहीं रहती।

आप जानते हैं कि यही नहीं कि इन्हें खुले गले से भोजपुरी का कवि नहीं कहा गया,यह भी कि इन्हें खुले गले से कवि भी नहीं कहा गया। शुक्ल जी ने सिद्धों–योगियों की रचनाओं के बारे में एकमुश्त कहा कि वे सांप्रदायिक शिक्षा मात्र हैं, शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आ सकती। कबीर के बारे में भी उन्होंने यही कहा कि प्रतिभा उनकी प्रखर है, अपनी बातों से वे सामान्य जनता की वृद्धि कही है वे नयी न होने पर भी वाग्वैचिश्यके कारण अनपढ़ लोगों को चकित किया करती है। सबको पता है मित्रों, कि इन सब बातों के लिए शुक्ल जी की काफी मजम्मत हुई, होती रहती है। कबीर को कवि साबित करने के नाना जतन किए गए, और साबित कर भी लिया गया, लेकन उस विस्तार में न जाकर भाषा और साहित्य की शुक्ल जी की समझ के प्रति नितान्त निष्ठा रखते हुए यहाँ केवल यह कहना है कि इसे हिन्दी की भोजपुरी कविताई की एक बिरल विशेषता के रूप दर्ज कराना चाहिए कि उसके होने का मतलब एकदम से भोजपुरी में होना भी नहीं है, एकदम से कविता होना भी नही है। इसे ऐसे भी कह सकते है कि भोजपुरिया मन में शुश भाषा के लिए या शुद्ध साहित्य के लिये आदर जैसी कोई चीज नहीं है। इसका मतलब यह नहीं कि शुद्धता जिनके लिये आदरणीय है, वे 'गलती' पर हैं। बात बस इतनी–सी है। कि शुद्धता के आग्रह से परे होकर हम 'अपनी' पर हैं। इसीलिए जो लोग खाँटी मरद होने का

खाँटी बाभन, खाँटी ठाकुर होने का गुमान करते हैं, वे अगर भोजपुरिया हैं भी, तो खाँटी भोजपुरिया नहीं है, क्योंकि भोजपुरिया का खाँटीपन, खाँटीपन के फेरे में न आने में है खाँटीपन के घेरे में न जाने में हे। भोजपुरी कविता है तो भोजपुरी ही की कविता है, किसी और की नहीं, सेा बात नहीं; भोजपुरी की कविता ही है, कुछ और नहीं, सो बात नहीं। भोजपुरी कविता किसी बंद भोजपुरी की कोई बंद कविता नहीं है। मुश्किल यह है कि यह, ओर तो और, भोजपुरी कविता किसी बंद भोजपुरी की कोई बंद कविता नहीं है। मुश्किल यह है कि यह, और तो और, भोजपुरिए भी अब लगभग भूलने लगे है कि वे 'ही' वाली बिरादरी के नहीं हैं, 'भी' वाली बिरादरी के है।

श्री दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह की प्रसिद्ध पुस्तक 'भोजपुरी के कवि और काव्य' में संपादक श्री विश्वनाथ प्रसाद के संपादकीय में भोजपुरी के कई ऐसे गीतों का उल्लेख है जो विद्यापति, सूर, तुलसी, मीरा आदि का नाम–छाप के साथ भोजपुरी इलाके में प्रचलित रहे हैं।। मेरी यह एक जघन्य किस्म की आकांक्षा है कि जो विद्वान कबीर से तुलसी और तुलसी से कबीर लड़ाने में अपनी सारी विद्या खरच देते हैं, वे इतना तो जानें ही कि भोजपुरियां मन 'कबीर' या तुलसी वाला नहीं है। 'कबीर और तुलसी' वाला हे। कबीर के इलाके में तुलसी का, सूर का, विद्यापति का अपनी भाषा में ही नहीं, उस इलाके की अपनी भाषा में भी मौजूद होना एक और बात कहता है, कि जो लोग अक्सर मुँह बा कर यह पूछने लगते है कि अवधी के पास तो जायसी और तुलसी हैं, ब्रजभाषा के पास सूर हैं, मैथिली के पास विद्यापति हैं, भोजपुरी के पास कौन है। जयशंकर प्रसाद कबीर को अवधी का कवि मानते हैं जबकि कबीर खुद को पूरबी या पुरबिया का कवि कहते हैं। और पुरबिया का मतलब है अवधी और भोजपुरी का मध्य–क्षेत्र।

Hkkt ijh dh fuxfu;k ijEijk

भगवती प्रसाद द्विवेदी

यों तो अलग–अलग दौर में कविता के कई आन्दोलन हुए कई धाराएँ प्रवाहित हुई, मगर उन सबमें भक्तिकाल को स्वर्णयुग के रूप में आज भी याद किया जाता है। भक्तिकाल ने अनेक महत्वपूर्ण कवि दिये। उन सबक सिरमौर थे संत कबीरदास। कबीर भोजपुरी के आदि कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं और उन्होंने निर्गुनिया परम्परा के बतौर प्रवर्तक, ऐतिहासिक भूमिका अदा की थी।

सिद्ध–नाथ व वीरगाथा काल के बाद रणथंभोर में पृथवीराज के पराभव के साथ ही मुस्लिम शासक शहाबुद्दीन गोरी ने दिल्ली की राजसत्ता पर पाँव जमाना प्रारम्भ कर दिया था। संवत् 1263 में गोरी की मृत्यु के बाद उसके गुलात कतुबुद्दीन ऐबक से लेकर अलाउद्दीन खिलजी, कुतुबुद्दीन मुबारक , मुहम्मद तुगलक और लोदीवंश के अंतिम बादशाह इब्राहिम लोदी ते इस्लामी राजसत्ता न सिर्फ काबिज रही, बल्कि जबरन धर्म–परिवर्तन कराने, कृषकों से नाजायज अनाप–शनाप ढंग से मनमाना कर वसूलने और हुनरमंद कारीगरों–कलाकारों के हाथ काट लेने का अमानवीय सिलसिला बदस्तूर जारी रहा। निराश–हताश जनता की व्यथा–कथा कोई भी सुनने को तैयार न था। न तो शासक परियाद सुनते थे, न ईश्वरीय प्रार्थना का ही कोई सकारात्मक प्रभाव परिलक्षित होता था। किंकर्त्तव्य विमूद हिन्दू बहुल समाज अनीश्वरवाद की ओर अग्रसर हो रहा था। चारों तरफ जातीय विद्वेष और कठमुल्लापन हावी था। कबीर का आविर्भाव ऐसे ही समय में हुआ था। एक ओर शासकों के अत्याचार से उत्पीड़ित मानवता, वहीं दूसरी ओर रूढ़ियों, अंधविश्वास, धर्म–मजहब के नाम पर तरह–तरह के ढकोसलों और ऊँच–नीच

के भेदभाव में आकँठ डूबा समाज। हालाँकि आम जनता को नैराश्यपूर्ण जीवन से सगुण भक्ति की ओर मोड़ने के लिए पंढरपुर के भक्त शिरोमणि नामदेव ने बहुत कोशिश की थी, साथ ही सेना, धना, भवानंद, पीपा एवं रैदास ने भी भरपूर प्रयास किये थे। किन्तु कोई खास असर होता ही नहीं दिख रहा था। जुलाहा परिवार में पले–बढ़े कबीर ने गौर किया कि मुसलमानों में द्विज और शुद्र का भेद नहीं है,फिर हिन्दुओं में जातीय वैषम्य क्यों? उन्होंने अनीश्वरवाद को भारतीय अद्वैतवाद और मुसलमानी एकेश्वरवाद से जोड़कर भक्ति के अभिनव मार्ग निर्गुण भक्ति का सूत्रपात किया तथा मूर्तिपूजा का विरोध कर जाति–पाँति का भेद खत्म करने एवं हिन्दू–मुसलमानों की एकता में अग्रणी भूमिका निभाई।

'भज' धातु से निर्मित 'भक्ति' शब्द का अर्थ होता है भजना। भक्ति यानी ईश्वर के प्रति सच्ची अनुरक्ति। अद्वैतवाद और एकेश्वरवाद का मत है कि जो है सो एक ही है। इसलिए जब हम किसी को दुःख पहुँचाते हैं तो खुद ही दुखी होते हैं,क्योंकि दूसरा कोई तो है ही नहीं। अतः जब दूसरों को सुख बाँटेंगे, तो स्वयं भी सुखी होंगे।

भोजपुरी की निर्गुनिया परम्परा के जनक हैं महात्मा कबीर। पं. गणेश चौबे ने भोजपुरी क्षेत्र में पाँच संत सम्प्रदाय की चर्चा की हैः

कबीर पंथ (काशी)
शिवनारायण सम्प्रदाय (वलिया)
दरिया पंथ (शाहाबाद)
सखी सम्प्रदाय (सारण)
सरभंग सम्प्रदाय (चंपारण)

निर्गुण भक्ति में निराकार ब्रम्ह की उपासना की जाती है और ब्रम्ह से जीव के मिलन के मार्ग में अवरोध के रूप में आने वाली माया के प्रति सचेत किया जाता है। प्राचीन धर्मग्रंथों में मोक्ष की प्राप्ति के लिए भक्ति–योग को सबसे

सुगम और आसान मार्ग बताया गया है। अन्य तीन योग के के मार्ग अपेक्षाकृत कठिन हैं। वे हैं–

राजयोग, कर्मयोग तथा ज्ञानयोग। निर्गुण काव्यधारा के भूलभूत सिद्धांत हैः

(अ) वर का निवास प्रत्येक व्यक्ति के अंतर में होता है।
(ब) मन्दिर–मस्जिद में परमात्मा की तलाश व्यर्थ है।
(स) वर एक है और सच्चा प्रेम व भक्ति ईश्वरीय उपासना के श्रेष्ठ मार्ग हैं।
(द) मनुष्य की श्रेष्ठता का मानदंड उसका कर्म होता है, जाति नहीं।
(इ) भक्ति के द्वारा व्यक्ति मोक्ष पा सकता है।

हालाँकि कबीर ने गुरू रामानंद से राम नाम की दीक्षा ली थी, पर राम से उनका तात्पर्य निर्गुण ब्रम्ह से ही था।

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।

इसीलिए कबीर उपदेश दिया करते थे–'निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई!'

जल में रखे जल से भरे घड़े के माध्यम से ब्रम्ह के बाह्य व अंतर रूप का अहसास कराते हुए कबीर कहते हैंः

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर-भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यह तथ कहौं गियानी।।

कबीर का दुःख तो समूचे संसार के लिए था, अतः क्योंकि सामाजिक चेतना जगाने की गरज से उनका दुखी होना स्वाभाविक था, क्योंकि सांसारिक लोगों ने माया को ही सच्चा सुख मान लिया है :

सुखिया सब संसार है, खावै अरू सौवे।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरू रोवै।।

निर्गुनिया परम्परा की मार्फत कबीर ने नवजागरण का भी सूत्रपात किया और जाति धर्म की खाई को पाटने की हर संभव कोशिश की। वह स्वयं तो जुलाहा परिवार से थे ही, संत नामदेव पेशे से दरजी थे, रैदास मोची थे, और दादू धुरिया थे। आज सबका नाम आदर के साथ लिया जाता है।

भक्ति–काव्य निर्गुण में परमात्मा ब्रम्ह को पति, प्रियतम और खुद को पत्नी, प्रिया का संबोधन दिया जाता रहा है। उसमें इहलोक को मायके (नैहर) परलोक को पिया का घर (ससुराल) माना जाता है। वहाँ आँखों की कोठरी में पुतली–पलंग बिछाकर पलकों की चिक डाल, पिया को रिझानेवाले निर्गुनिया कबीर पूरे आत्मविश्वास के साथ मौजूद हैं :

नैनो की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के, पिउ को लिया रिझाय।।

जब 'पी' को रिझाने की अदा आ गई, फिर ससुराल जाने में भय कैसा।

प्रियतम (परमात्मा) के दर्शन और मिलन को बेकरार कबीर (जीव) गुहार लगाते हैं किसी ऐसे परोपकारी की, जो उन तक संदेश पहुँचा सके :

है कोई ऐसा पर उपकारी, हरि सों कहे सुनाइ रे,
अब तो बेहाल कबीर भए हैं, बिनु देखे जिउ जाइ रे।

संसार रूपी कीचड़ में धँसा आत्मा रूपी हीरा। हिन्दू मुस्लिम इसकी खोज में पूजा–पाठ, तीर्थ–व्रत के आडम्बर में तल्लीन हैं। मगर हीरे की परख तो जौहरी ही कर सकता है :

तोर हीरा हेराइल बा कीचरे में।
केहू ढूँढ़े पूरब केहू ढूँढ़े पछिम, केहू ढूँढ़े पानी पथरे में।।
सुन नर मुनि अउरू पीर अवलिया, भूलल बाड़े सब नखरे में।
दास कबीर ई हीरा के परखले, बान्हि लिहले जतन से अँचरे में।।

इसीलिए माया को महाठगिनी कहा गया है, जो त्रिगुण फाँस लिए हुए मीठी वाणी से मायाजाल फैलाकर फँसाने के लिए बेकरार है :

माया महाठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँस लिए कर डोले, बोले मधुरी बानी।।

फिर तो महाप्रयाण की झलक दिखाकर संत कबीर बारम्बार आगाह करते हैं :कवनो ठगवा नगरिया लूटल हो।

चँदन काठ के बनल खटोलना, तापर दुलहिन सूतल हो।।
उठो री सखी मोरी माँग सँवारो, दुलहा मोसे रूसल हो।।
आए जमराज पलंग चढ़ि बैठे, नैनन आँसुआ सूखल हो ।।
चारि जने मिलि खाट उठवले, चहुँदिशि धू-घू उठल हो।।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जग से नाता अूटल हो ।।

कबीर ने सच्चे प्रेम–समर्पण से निर्गुण ब्रम्ह की उपासना की जो राह दिखाई, उसने सूर और तुलसी को कृष्ण व राम की सगुण भक्ति का मार्ग भी प्रशस्त किया।

कबीर की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए उनके पुत्र कमाल ने निर्गुण पदों के जरिए ज्ञान और रहस्यमयता को वाणी दी। एक पद दृष्टव्य है :

अइसन ग्यान न देखल अबहुल।
माता हमरो पहिले मुअली, पीछे जनम हमारा जी।
पिता हमरो बियहन चलले, हम चललीं बरियाती जी।
ससुर हमरो असी बरीस के, सासुजी बाड़ी कुँवारी जी।
सइँया मोर पलंग चढ़ि झूले, हमही झुलावन हारी जी।।

कबीरदास के प्रधान शिष्य एवं कबीर पंथ (छत्तीसगढ़ी शाखा) के प्रतिष्ठापक संत धरमदास ने निर्गुनिया परिपाटी से जुड़कर मौलिक काव्य–धारा प्रवाहित की, साथ ही कबीर के विचारों के प्रसार में अहम योगदान दिया। उनके निर्गुण की बानगी देखें :

कहवाँ से जीव आइल, कहवाँ समाइल हो।
कहवाँ कइल मुकाम, कहवाँ लपिटाइल हो।।
निरगुन से जीव आइल, सरगुन समाइल हो।
कायागढ़ कइल मुकाम, माया माया लपिटाइल हो।।

व्यवसाय से जुड़े धरमदास जी ने पेशेगत रूपकों का ठीक वैसे ही इस्तेमाल किया, जैसे कबीर ने बुनकर कर्म से जुड़कर 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' की रचना की थी।

हम सतनाम के बैपारी।
कोई-कोई लादे काँसा-पीतल, कोई-कोई लौंग-सुपारी।।
हम त लादी नाम धनी के, पूरन खेप हमारी।।
पूँजी न टूटे, नुफा चौगुना, बनिज किया हम भारी।।
हाट जगत के रोकि ना सकिहें, निर्भय गैल हमारी।।
नाम पदारथ लादि चला है, धरमदास बैपारी।।

यह सिलसिला अनवरत आगे बढ़ता रहा और संत कवि धरनीदास, पलटूदास, दरिया साहेब, लक्ष्मी सखी, गुलाल साहेब, भीखा साहेब, शिवनारायण स्वामी, बाबा किनाराम, भीखमराम आदि ने अपने–अपने स्तर से निर्गुण पदों की रचना की। इनमें मानव शरीर व क्षणभंगुर जीवन की नश्वरता पर पलटूदास की चंद पंक्तियां उद्धृत हैं :

कै दिन का तोरा जियना रे, नर चेतु गँवार।
काँची माटी के धैला हो, फूटत नहिं बेर।
पानी बीच बतासर हो, लागे गलत न देर।
घने बाँस का पिंजरा हो, तेहि बीच दस द्वार।
पंछी पवन बसेरू हो, लाबै उड़त न बार।
आतिसबाजी यह तन हो, हाथे काल के आग।
पलटूदास उड़ि जैबहु हो, जब देइहि दाग।।

बीसवी सदी के शुरूआती दौर में लोकधुन पूरबी के प्रवर्तक–पुरोधा के रूप में प्रसिद्ध महेन्द्र मिसिर के निर्गुण को प्रचण्ड लोकप्रियता हासिल हुई थी। हालाँकि महेन्द्र मिसिर के निर्गुण में भी विम्ब–प्रतीक, उपमाएँ अन्य भक्त कवियों जैसी ही हैं, उदाहरणार्थ डोली–कहार, नैहर–ससुराल, पिया–प्रिया आदि। मगर जहाँ भी भोजपुरी अंचल के बिम्ब नई ताजगी के साथ उकेरे गये हैं, रचना की जीवंतता व प्रभाव में चार चाँद लग गये हैं। सुपुली–मउनी के साथ मगन हो खेलती अगंध बच्ची का विम्ब भी वैसा ही है:

खेलइत रहली हम सुपुली-मउनिया
ए ननदिया मोरी रे, आई गइले डोलिया-कहाँर।
नाहीं मोरा लूरा-ढंग, एको ना रहनवाँ।
ए ननदिया मोरी रे, लेइके चलेलें ससुरार।

कवि ने निर्गुण की मार्फत जनमानस की भावनाओं को ही अभिव्यक्ति दी है। इस मायालोक से हर जीव की जो आसक्ति होती है, उससे एकाएक नाता तोड़कर ससुराल जाना अत्यंत पीड़ादाई है। मोहाविष्ट मन इस जंजाल में ही फँसे रहने का आदी हो चुका होता है। फिर तो इस तथाकथित प्रेमनगरी छूटने से मन भयाक्रांत होगा ही। कवि यहाँ चेतावनी भी देता है–चेतो मेरे भाई! समय तेजी से भागता जा रहा है।

सखि हो, प्रेम नगरिया हमरो छूटल जात बा
जियरा मोर डेरात बा ना।
घर में बाप-मतारी-भाई, सँग में केहू नाहीं जाई
सखि हो, झूठे नाता जग में इहाँ बुझात बा
जियरा मोर डेरात बा ना।
छूटल घरवा-दुआर, छूटल जग परिवार
सखि हो, नेकी-बदी सँगवा ससुरा जात बा
जियरा मोर डेरात बा ना।

निरगुन द्विज महेन्दर गावे, लेखा जंग के इहे बतावे
सखि हो, हरि के भजड़, समइया बीतल जात बाजियरा मोर डेरात बा ना।

एक दूसरे निर्गुण में मिसिरजी ऊँच–नीच, छोटे–बड़े, रंग–रूप के विभेद को निरर्थक बतलाते हुए समाज को आईना दिखाते हैं कि मिट्टी के अलग–अलग खिलौनों को गढ़नेवाला शिल्पकार तो एक ही है। फिर यह बेसिर–पैर का विवाद क्यों? हमें अपने मिट्टी के तन की सार्थकता सिद्ध करने के लिए मनुष्यता के कार्मों में मुसतेदी से लग जाना चाहिए। वैसे भी, मिट्टी के खिलौने को एक दिन मिट्टी में ही मिल जाना है।

एके गो मटिया के दुई गो खेलवना,
मोर सँवरिया रे, गढ़ेवाला एके गो कोंहार।
कवनो खेलवना के रंग गोरे-गोरे
मोर सँवरिया रे, कवनो खेलवना लहरदार।
कवनो खेलवना के अटपट गढ़निया
मोर सँवरिया रे, कवनो खेलवना जिउवा मार।
माटी के खेलवना एक दिन माटी मिलि जइहें,
कहत महेनद पिया अबही से चेतड़
मोर सँवरिया रे, मानुस तब ना मिली बारंबार।

भोजपुरी के भारतेन्दु हरशिचंद्र भिखारी ठाकुर ने अपने सुप्रसिद्ध नाटक 'बिदेसिया' के पात्रों के माध्यम से निर्गुनिया परम्परा को जीवंतता प्रदान की है। पंक्तियाँ गौरतलब हैं– 'एह तमासा में चार आदमी के पाठ बा– बिदेसी, प्यारी सुंदरी, बटोही, आ रखेलिन। बिदेसी ब्रम्ह, बटोही धरम, रखेलिन माया, प्यारी सुंदरी जीव। ब्रम्ह जीव देनो जाना एही देह में बाड़न, बाकिर भेंट ना होखे। कारन? माया। एकरा के काटेवाला बटोही धरम। आत्मा से परमात्मा काहे कुरोख हो गइलन? जइसे स्त्री के पति छोड़ के परदेस चल जालन, तइसे झूठ–झंझट से आत्मा से परमात्मा कुरोख हो जालन। बीच में

कारन–रखेलिन। झंझट से छोड़ा के मिलाप करा देबे खातिर बटोही–उपदेश। एह चारों के संवाद होखे के चाहीं। प्यारी सुंदरी के राधिका जी लेखा, बिदेसी के श्रीकृष्ण चंद्र जी लेखा, रखेलिन के कुबरी लेखा, बटोही के ऊधोजी लेखा।'

अधिकांश भोजपुरी निर्गुण में निर्गुणकार का दासत्व भाव परिलक्षित होता है। कहीं मायावी मोपाश में बँधकर इहलोह न छोड़ने की जिद है, अपने कुकर्मों के प्रति पछतावा का भाव है तो कहीं आत्मा–परमात्मा के लिए बेंकली भी है। निर्गुणकारों की पारखी नजर ने लोक की दुश्चिंताओ–समस्याओं को खुली आँखो से देखकर परम्परा और लोक से बहुत कुछ लिया तथा लोक की भाषा, मुहावरे में गीत–संगीत की मार्फत इस अन्दाज में लौटाया कि सम्पूर्ण लोकमानस चमत्कृत रह गयां तभी तो वे बेशकीमती निर्गुण गीत आज भी लोक की जुबान पर हैं और भोजपुरी साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

भोजपुरी साहित्य अकादमी,
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग